* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९७

संख्या ३

गीताप्रेस, गोरखपुर

रामावतार

मणिद्वीपमें भगवती भुवनेश्वरी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, मार्च २०२३ ई०

संख्या ३

पूर्ण संख्या ११५६

दिव्य मणिद्वीपमें भगवती भुवनेश्वरी

ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः। मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते॥×××
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमाराङ्गवल्लरी। सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी॥
निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी। कोटिकोटिरवीन्दूनां कान्तिं या बिभ्रती परा॥
नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवाङ्गनादिभिः। सर्वाभिर्देवताभिस्तु समन्तात्परिवेष्टिता॥×××
या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्॥
समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवन्ते जगदीश्वरीम्। सप्तकोटिमहामन्त्रा मूर्तिमन्त उपासते॥
महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्। कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥

ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना गया है, वही मणिद्वीप है; जहाँ भगवती भुवनेश्वरी विराजमान रहती हैं। वे भगवती समस्त शृंगारवेषसे सम्पन्न, लताके समान अत्यन्त कोमल अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणासे ओतप्रोत हैं। वे अपनी वाणीकी मधुरतासे वीणाके स्वरोंको भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती करोड़ों-करोड़ों सूर्यों तथा चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती हैं। वे बहुत-सी सखियों, दासियों, देवांगनाओं तथा समस्त देवताओंसे चारों ओरसे सदा घिरी रहती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रहकर जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। मूर्तिमान् होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्याएँ उन साम्यावस्थावाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हैं। [श्रीदेवीभागवत स्कन्ध १२]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, मार्च २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ३

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- दिव्य मणिद्वीपमें भगवती भुवनेश्वरी	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- रामावतार [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- महाभारतकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९
६- व्यवहारकी शुद्धिसे परमार्थकी सिद्धि (ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्द गिरिजी महाराज)	१०
७- सब फल ईश्वर ही देता है (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३
८- साधकोंके लिये करणीय (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१४
९- पापका बाप [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
१०- सादा जीवन, उच्च विचार [**प्रेरक प्रसंग**]	१५
११- रामकथाके वक्ता एवं श्रोता (श्रीशिवदत्तजी पाण्डेय, साहित्याचार्य)	१६
१२- भगवान् कहाँ हैं ? मानव-जीवनमें सुख-दुःख (श्रीसीतारामजी)	२०
१३- सबमें राम [**प्रेरक-प्रसंग**]	२१
१४- गीतामें राजधर्मके सूत्र (श्रीहरिरामजी सावला)	२२
१५- डॉक्टर नहीं, पण्डित [**प्रेरक-प्रसंग**]	२५
१६- 'भोग' और 'प्रसाद' (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	२६
१७- कैसे प्राप्त हो सद्बुद्धि ? (श्रीबरजोर सिंहजी)	२७
१८- कर्तव्य-पालन [**प्रेरक-प्रसंग**]	२८
१९- मानव-देहकी सार्थकता (डॉ० श्रीफूलचन्दप्रसादजी गुप्त)	२९
२०- गलत कामसे बचनेका उपाय [**प्रेरक-प्रसंग**]	३२
२१- श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें रामभक्तिका स्वरूप (प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)	३३
२२- महामनाकी विवेकशीलता [**प्रेरक-प्रसंग**]	३४
२३- गंगातटस्थित बिठूर (कानपुर)-का दण्डीबाड़ा [**तीर्थ-दर्शन**] (श्रीशिवगोपालजी शुक्ल)	३५
२४- विश्वयोग—महायोगीकी ही जलायी ज्योति (डॉ० श्रीकन्हैयासिंहजी)	३७
२५- पुण्यसलिला शिप्राका माहात्म्य [प्रस्तुति—प्रो० श्री बी० के० कुमावतजी]	३८
२६- दादूपंथी संत श्रीसालिगरामजी [**सन्त-चरित**] (प्रो० श्रीरोहितजी नारा)	४०
२७- चरक-संहितामें गोमूत्रके उपयोग (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	४२
२८- एक ज्वलन्त प्रश्न ?	४३
२९- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
३०- व्रतोत्सव-पर्व [**वैशाखमासके व्रत-पर्व**]	४५
३१- कृपानुभूति	४६
३२- पढ़ो, समझो और करो	४७
३३- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- रामावतार	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- मणिद्वीपमें भगवती भुवनेश्वरी	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- रामावतार	(इकरंगा)	७

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारतमें महर्षि व्यासजीकी घोषणा है—'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'। (मनुष्य होनेसे अधिक अच्छा कुछ भी नहीं है।) यह साक्षात् भगवत्कृपा है, जो हम सब मनुष्य-शरीरमें जन्मे हैं। अन्य प्राणियोंकी तुलनामें 'विवेक' ही मनुष्य-जन्मकी विशेषता है।

विवेककी प्रधान बात यह याद रखनेकी है कि जो 'हमारा' है, वह 'हम' नहीं हैं। हमारे सगे-सम्बन्धी, मित्र, घर-द्वार और अन्य प्राणी-पदार्थ 'हम' नहीं हैं—यह तो प्रायः स्पष्ट रहता है, किंतु 'हमारा शरीर', 'हमारा मन' और 'हमारी बुद्धि' भी 'हम' नहीं हैं—यह प्रायः हम भूल जाते हैं। यह जागृति, यह होश हमें बराबर बनाकर रखना चाहिये कि 'मैं' और 'मेरा' शरीर-संसार दोनों अलग-अलग हैं। यह जागृति हमें मनुष्य होनेकी गरिमा देती है और तभी हम स्वयंमें सच्चिदानन्दकी अनुभूति करनेमें सक्षम होते हैं।

—सम्पादक

कल्याण

याद रखो—सच्चा मानव वही है, जिसमें मानवता हो। मानवताका प्रधान स्वरूप है—जीवनका भगवान्‌के अभिमुख होकर यथार्थ आत्मकल्याणकी ओर अग्रसर होना। नहीं तो, पशु और मनुष्यमें कोई अन्तर नहीं है। खाना, सोना, डरना, स्त्री-पुरुषका मिलना, क्रोध करना—ये सभी बातें जितनी मनुष्यमें हैं, उतनी ही पशुमें भी हैं। मनुष्यमें केवल एक यही विशेषता है कि वह अपने कल्याणकी बात सोच सकता है, आत्मकल्याणके साधन कर सकता है और आत्मकल्याणको प्राप्त कर सकता है। जो इस विवेकसे रहित है, वह तो मनुष्यके रूपमें पशु ही है।

याद रखो—मनुष्यमें भगवान्‌की दी हुई बुद्धि-शक्ति है और उसको नवीन कर्मके सम्पादनका अधिकार प्राप्त है। इस बुद्धिशक्ति और कर्माधिकारका सदुपयोग करके वह महामानव, देवता ही नहीं—परमात्म-स्वरूपको प्राप्त कर सकता है, जो मानव-जीवनका परम ध्येय है। परंतु उसी बुद्धिशक्तिका यदि वह विपरीत दिशामें प्रयोग करता है, तो उसके द्वारा विपरीत कर्म बनते हैं और वह असुर बन जाता है। फिर वह अपनी जघन्य आसुरी क्रियाओंसे प्रतिपल संसारके प्राणियोंका घोर अहित करके उनको भयानक दु:ख पहुँचानेमें कारण बनता है। फलत: उसे भगवत्प्राप्ति या आत्मकल्याणकी प्राप्ति नहीं होती।

याद रखो—ऐसा असुर-मानव भोगोंकी प्राप्ति और उपभोगको ही जीवनका एकमात्र लक्ष्य बनाकर उनके लिये अविराम प्रयत्न करता है और जीवनके अन्तिम क्षणतक अनन्त चिन्ताओंसे ग्रस्त हुआ वह असत्-आचरणोंमें लगा रहता है। इससे उसका मानव-जीवन सर्वथा व्यर्थ ही नहीं होता, वह बार-बार घृणित आसुरी योनिको और उससे भी अत्यन्त अधम नारकी गतिको प्राप्त होता है, उसके लिये मानव-जीवन उद्धारका हेतु न बनकर घोर अभिशाप बन जाता है। यह मनुष्य-जीवनकी अत्यन्त दु:खदायिनी असफलता है। जो उसका दुरुपयोग करनेके कारण प्राप्त होती है।

याद रखो—तुम संसारमें एक ही महान् कर्म करनेके लिये आये हो, जो अबतक किसी भी योनिमें सम्पन्न नहीं हुआ। वह महान् कार्य है भगवत्प्राप्ति और तुम उसके पूर्ण अधिकारी हो। पर तुम अपने जीवनके इस परम पवित्र उद्देश्यको भूलकर उन प्राणि-पदार्थोंके पीछे पागल हो रहे हो, जो अन्तमें तुम्हें धोखा देंगे, तुम्हें उन सबको छोड़कर यहाँसे अकेले चला जाना पड़ेगा। फिर सिवा पछतानेके तुम्हारे हाथमें कोई भी उपाय नहीं रह जायगा।

याद रखो—तुम्हारे जीवनका भगवत्प्राप्ति ही परम ध्येय है। इसलिये तुम अपना प्रत्येक काम भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करो। निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते हुए अपने प्रत्येक कर्मसे भगवान्‌की पूजा करो। कर्म करो सुचारु रूपसे, कहीं चूको मत। आलस्य या प्रमादसे कर्मका स्वरूप मत बिगाड़ो। पर करो केवल भगवान्‌के लिये ही भोगोंकी आशा-आकांक्षाको मनसे निकाल दो।

याद रखो—भगवान्‌के लिये होनेवाले कर्म वही हैं, जिनमें आसक्ति नहीं है, जिनमें भोगकामना नहीं है, जिनके अनुकूल अथवा प्रतिकूल फलमें समबुद्धि है और जिनके द्वारा संसारके किसी भी प्राणीका कोई अहित नहीं होता एवं किसीके भी सुखका नाश नहीं होता।

याद रखो—जिन कर्मोंसे दूसरे प्राणियोंका अहित होता है या उनके सुखका नाश होता है, वे कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये नहीं होते। उनसे तुम्हें कभी परिणाममें सुख नहीं मिलेगा। जो मनुष्य दूसरोंके सुखका नाश करके सुखी होनेकी आशा करता है, वह बड़ा ही अभागा है। ऐसे कर्मोंसे भगवान्‌की अप्रसन्नता और परिणाममें असीम दु:खोंकी प्राप्ति होती है। इसलिये सब प्राणियोंमें नित्य-निरन्तर भगवान्‌को देखते हुए उनकी हितभरी सेवाके द्वारा भगवान्‌की पूजा करो। अपने मानव-जीवनके लक्ष्यको कभी मत भूलो और शरीर छूटनेसे पहले ही उसे प्राप्त करके मानव-जीवनको सफल बना लो। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

रामावतार

कोसल नामक प्रसिद्ध जनपदमें पुण्यसलिला सरयूके तटपर अयोध्या नामकी पावन नगरी है। इसको प्रारम्भसे ही एक-से-एक धर्मात्मा सूर्यवंशी राजाओंकी राजधानी होनेका गौरव प्राप्त है। इस पुरीको स्वयं महाराज मनुने बसाया था। महाराज दशरथ इस पवित्र पुरीके राजा थे। वे चक्रवर्ती सम्राट्, वेदोंके प्रकाण्ड विद्वान्, दूरदर्शी और महान् तेजस्वी थे। धर्म, अर्थ और कामका यथोचित पालन करनेवाले वे सत्यप्रतिज्ञ नरेश उस श्रेष्ठ अयोध्यापुरीका उसी तरह पालन करते थे, जैसे इन्द्र अमरावतीपुरीका पालन करते हैं। उस उत्तम नगरीमें निवास करनेवाले सभी मनुष्य धर्मात्मा, निर्लोभी तथा सत्यवादी थे। सभी वर्णके लोग अपने कर्तव्य-कर्मोंका पालन करते हुए परस्पर सौहार्दपूर्वक रहते थे। महाराज दशरथके अपार वैभवको देखकर यक्षोंके राजा कुबेर भी संकुचित हो जाते थे। महाराज दशरथकी तीन रानियाँ थीं, जिनका नाम कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी था। वे रूप, शील और गुणोंकी खान, पतिव्रता तथा भगवद्भक्त थीं। बहुत दिनोंतक महाराज दशरथको कोई पुत्र नहीं हुआ। चौथापन आ पहुँचा। एक दिन महाराज दशरथ पुत्रके अभावके दुःखसे अत्यन्त दुखी हुए। उनका मन ग्लानि और क्षोभसे भर गया। फिर वे इस समस्याके समाधानके लिये अपने गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गुरु और गुरुपत्नीको साष्टांग प्रणाम किया। एकान्त प्राप्तकर उन्होंने गुरुसे निवेदन किया—'प्रभो! गृहस्थधर्म स्वीकार करनेका मुख्य उद्देश्य सृष्टिकी परम्पराको आगे बढ़ानेके लिये योग्य पुत्र उत्पन्न करना है। मनुष्यको नरकसे त्राण दिलानेके कारण ही उसे पुत्र कहा जाता है। पुत्रके द्वारा ही पितरोंका तर्पण होता है तथा कुलधर्म और जातिधर्मकी शाश्वत परम्पराका निर्वाह होता है। इसलिये समाजको योग्य पुत्र प्रदान करना गृहस्थका परम धर्म है। मैंने भी इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये एक नहीं, तीन-तीन विवाह किये; परंतु मेरी अभिलाषा अभीतक अधूरी ही रही। जीवनका 'सन्ध्याकाल' चौथापन आ पहुँचा। अब तो मुझे आपकी कृपाका ही सहारा है गुरुदेव! आप शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा करें, जिससे अयोध्याके इस राजसिंहासनके लिये किसी योग्य पुत्रकी प्राप्ति हो और मेरे मनोरथकी सिद्धि हो।'

गुरु वसिष्ठने कहा—'राजन्! चिन्ता न करो। अब अत्यन्त शीघ्र ही तुम्हें पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति होगी। विभाण्डक ऋषिके पुत्र शृंगी ऋषि वेदोंके पारगामी विद्वान् हैं। तुम उन्हें बुलवाकर पुत्रेष्टि यज्ञका आयोजन करो। तुम्हारा निश्चित ही कल्याण होगा।'

गुरु वसिष्ठकी आज्ञा स्वीकारकर महाराज दशरथने शृंगी ऋषिको बुलवाया। वे बड़े ही मेधावी थे। शृंगी ऋषिने कहा—'महाराज! मैं आपको पुत्र प्राप्त करवानेके लिये अथर्ववेदके मन्त्रोंद्वारा पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूँगा।' ऋषिके आज्ञानुसार महाराज दशरथने तत्काल यज्ञके लिये सारी सामग्री सुलभ करा दी। तेजस्वी ऋषिने पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ प्रारम्भ किया और श्रौतविधिके अनुसार अग्निमें आहुति डाली। सभी देवता, सिद्ध, गन्धर्व, महर्षिगण विधिके अनुसार अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये यज्ञमें एकत्र हुए।

शृंगी ऋषिके आहुति डालते ही स्वयं अग्निदेव एक विशालकाय पुरुषके रूपमें यज्ञकुण्डसे प्रकट हुए। उनके दिव्य तेजको देखकर एक बार सबकी आँखें चौंधिया

गयीं। उन्होंने राजा दशरथकी ओर देखकर कहा—'राजन्! यह देवताओंकी बनायी हुई खीर है, जो सन्तान प्राप्त करानेवाली है। तुम इसे स्वीकार करो और अपनी योग्य पत्नियोंको बराबर भागमें बाँटकर खिला दो। उनके गर्भसे तुम्हें चार सुयोग्य पुत्रोंकी प्राप्ति होगी।'

अग्निदेव महाराज दशरथको खीर देकर अदृश्य हो गये। उसके बाद महाराज दशरथने अपनी कौसल्यादि प्रिय रानियोंको बुलाया और सबको यथायोग्य खीरका वितरण किया। अग्निदेवके द्वारा दिये गये प्रसादके प्रभावसे कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी—तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं। जिस दिनसे भगवान् कौसल्याके गर्भमें आये, उसी दिनसे सम्पूर्ण लोकोंकी सम्पत्ति सिमटकर अयोध्यामें आ गयी। चारों तरफ सुख और शान्तिका साम्राज्य छा गया। भगवान्‌का अंश सुमित्रा और कैकेयीके गर्भमें भी आ चुका था। इसलिये सब रानियाँ शोभा, शील और तेजकी खान दिखायी पड़ने लगीं।

आखिर प्रतीक्षाकी घड़ी आ पहुँची। योग, लग्न, तिथि और वार सभी अनुकूल हो गये। चारों ओर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता दिखायी पड़ने लगी; क्योंकि चराचर जगत्‌को सुख देनेवाले भगवान् श्रीरामके जन्मका वह दिव्य समय था। चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि थी। शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बह रही थी। नदियाँ स्वच्छ हो गयीं। सभी देवता विमल आकाशमें उपस्थित हो गये। गन्धर्व भगवान्‌का गुण गा रहे थे, देवता लोग हाथ जोड़कर भगवान्‌की प्रार्थना कर रहे थे और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे। जब सभी देवता स्तुति करके अपने-अपने धाम चले गये, तब अचानक कौसल्याजीका कक्ष दिव्य प्रकाशसे भर गया। धीरे-धीरे वह प्रकाशपुंज सिमटकर शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे विभूषित भगवान् विष्णुके रूपमें आ गया। भगवान्‌के इस अद्भुतरूपको कौसल्या अम्बा देखती ही रह गयीं। उनकी पलकें गिरनेका नाम ही नहीं लेती थीं। बहुत देरतक माँ प्रभुके इस दिव्य सौन्दर्यको निहारती रहीं। फिर होश सँभालकर तथा दोनों हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति करती हुई कहने लगीं—'हे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे अतीत प्रभु! मैं आपकी किस तरह स्तुति करूँ, यह मेरी समझमें नहीं आता! 'नेति-नेति' कहकर वेद आपके स्वरूपका प्रतिपादन करते हुए थक जाते हैं, फिर भी आपका पार नहीं पाते। मैं अबोध नारी भला आपकी क्या स्तुति कर सकती हूँ! आप करुणाके समुद्र और सभी गुणोंके केन्द्र हैं। यह आपकी परम कृपा है कि आप अपने भक्तोंसे अत्यन्त प्रेम करनेवाले हैं और मेरे हितके लिये प्रकट हुए हैं। आज मैं आपके इस दिव्य स्वरूपको देखकर धन्य हो गयी। अब आप अपने इस दिव्य स्वरूपको समेटकर नवजात शिशुके रूपमें आ जायँ और मुझे अपनी बाल-लीलाका आनन्द दें।'

कौसल्या अम्बाकी विनती सुनकर प्रभु शिशुरूपमें आ गये और अपने रुदनसे महलको गुँजा दिया। फिर क्या था, दासियोंके माध्यमसे पूरी अयोध्यामें कौसल्या अम्बाको पुत्र होनेका समाचार फैल गया। सम्पूर्ण अयोध्यावासी आनन्दसे झूम उठे। महाराज दशरथ तो पुत्रजन्मका समाचार सुनकर ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो गये। प्रेमके आवेगको रोकना उनके लिये कठिन हो रहा था। वे सोचने लगे कि जिन प्रभुके नाम-स्मरणमात्रसे विघ्नोंका विनाश होता है और सम्पूर्ण शुभोंकी प्राप्ति होती है, वही मेरे यहाँ अवतरित हुए हैं। उन्होंने तुरन्त सेवकोंको बुलाकर बाजा बजवाने एवं गुरु वसिष्ठको सादर बुलानेकी आज्ञा दी। राजाका सन्देश सुनकर वसिष्ठजी तुरन्त चले आये और वेदविधिके अनुसार नान्दीमुख-श्राद्ध तथा भगवान्‌का जातकर्म-संस्कार करवाया। कैकेयीजीकी कोखसे एक पुत्र तथा सुमित्राको भी दो पुत्र पैदा हुए। नगरकी वधूटियाँ अपने-अपने सिरपर मंगल-कलश लेकर गाती हुई महाराज दशरथके राजभवनमें आयीं। महाराज दशरथने ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारके दान देकर सन्तुष्ट किया। इस प्रकार आनन्दोत्सव और उल्लासमें कुछ दिन बीत गये। गुरु वसिष्ठने समयपर चारों कुमारोंका नामकरण-संस्कार किया। उन्होंने कौसल्याके पुत्रका नाम राम, कैकेयीके पुत्रका भरत तथा सुमित्राके पुत्रोंका नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा।

महाभारतकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महाभारतका भारतीय वाङ्मयमें बहुत ऊँचा स्थान है। इसे पंचम वेद भी कहते हैं। इसका विद्वानोंमें वेदोंका-सा आदर है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों ही पुरुषार्थोंका निरूपण किया गया है। धर्मके तो प्राय: सभी अंगोंका इसमें वर्णन है। वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म, श्राद्धधर्म, स्त्रीधर्म, मोक्षधर्म आदि विविध धर्मोंका शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्वमें भीष्मजीके द्वारा बहुत विशद वर्णन किया गया है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम ग्रन्थ, जिसे सारा संसार आदरकी दृष्टिसे देखता है और जिसे हम विश्वसाहित्यका सर्वोत्तम ग्रन्थ कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी, इसी महाभारतमें है। ज्ञान, कर्म और भक्तिका एक ही स्थानपर जैसा सुन्दर विवेचन गीतामें है, वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं मिलेगा। भगवद्गीता स्वयं भगवान्‌की दिव्य वाणी ही जो ठहरी। इस प्रकार जिस ओरसे भी हम महाभारतपर दृष्टिपात करते हैं, उसे हम परमोपयोगी पाते हैं। महाभारतके सम्बन्धमें स्वयं व्यासजीने कहा है—

अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम्॥
यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते॥
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः॥
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥

(महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व)

'अठारहों पुराण, सारे धर्मशास्त्र (स्मृतिग्रन्थ) तथा व्याकरण, ज्यौतिष, छन्द:शास्त्र, शिक्षा, कल्प एवं निरुक्त—इन छहों अंगोंसहित चारों वेद—ये सब मिलाकर एक ओर और अकेला महाभारत एक ओर। अर्थात् वेद-वेदांग, पुराण एवं धर्मशास्त्रोंके अध्ययनसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह अकेले महाभारतके अध्ययनसे प्राप्त हो सकता है। जिस प्रकार समुद्र और हिमालयपर्वत दोनोंको ही रत्नोंकी आकर कहा गया है, उसी प्रकार यह महाभारत ग्रन्थ भी उपदेश—रत्नोंकी खान कहा जाता है। एकाग्र मनसे जो इस महाभारत इतिहासका पाठ करता है, उसे मोक्षरूप परम सिद्धि नि:सन्देह प्राप्त हो जाती है। एक मनुष्य तो वेदज्ञ एवं अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाली सौ गौएँ दान करता है और दूसरा नित्य महाभारतकी पुण्यमयी कथाका श्रवण करता है; दोनोंको समान फल मिलता है।' जिस महाभारतकी स्वयं वेदव्यासजीने ऐसी महिमा गायी है, उसका मनोयोगपूर्वक जितना भी पठन-पाठन होगा, उतना ही जगत्‌का कल्याण होगा।*

महाभारतके पढ़ने-सुननेका अधिकार मनुष्यमात्रको है। कोई किसी भी समुदाय अथवा जातिका क्यों न हो, वह महाभारतका अध्ययनकर उसमें आये हुए उत्तमोत्तम उपदेशोंको यथाधिकार आचरणमें लाकर अपना कल्याण कर सकता है। महाभारतकी रचना करनेमें वेदव्यासजीका प्रधान उद्देश्य यही था कि जिन्हें शास्त्र वेद पढ़नेकी आज्ञा नहीं देते, वे लोग भी वेदोंके ज्ञानसे वंचित न रह जायँ इसी अभिप्रायसे ऊपर महाभारतके माहात्म्यके श्लोकोंमें यह बात कही गयी है कि अकेले महाभारतके पढ़ लेनेसे ही वेद-वेदांग, पुराण एवं धर्मशास्त्रोंका ज्ञान हो सकता है इससे वेदोंको नीचा बतलाना ग्रन्थकारका अभीष्ट नहीं है वस्तुत: महाभारतमें जो कुछ कहा गया है, उसका आधार तो हमारे सर्वमान्य वेद और स्मृतियाँ ही हैं। वेदों और स्मृतियोंका ही तात्पर्य सरल एवं रोचक ढंगसे महाभारतमें वर्णित है।

महाभारत एक उच्चकोटिका काव्य तो है ही, यह सच्चा इतिहास भी है। यह उपन्यासोंकी भाँति कपोल-कल्पित अथवा अतिरंजित नहीं है। जिन महर्षि वेदव्यासकी दी हुई दिव्यदृष्टिको पाकर संजय हस्तिनापुरमें बैठे हुए कुरुक्षेत्रमें होनेवाले युद्धकी छोटी-से-छोटी घटनाएँ ही नहीं, अपितु भगवान्‌का तत्त्व, प्रभाव एवं रहस्य तथा दूसरोंके मनकी बाततक जाननेमें समर्थ हो सके, उन्हीं भगवत्कल्प

महर्षिकी वाणीमें प्रमाद, असत्य एवं अतिशयोक्ति आदिकी तो कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। वे त्रिकालज्ञ तथा सर्वथा राग-द्वेषशून्य थे। महाभारतके कलेवरके सम्बन्धमें भी लोग अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ किया करते हैं; परंतु इस विषयमें मूल ग्रन्थको ही हमें प्रमाण मानना चाहिये, महाभारतमें ही इसकी श्लोक-संख्या एक लाख बतलायी गयी है। विद्या-बुद्धिके भण्डार स्वयं श्रीगणेशजीने इसे लिखा था और पूरे तीन वर्षोंमें यह ग्रन्थ तैयार हुआ था। फिर इसके विषयमें ऐसी शंका करना कि यह पूरा ग्रन्थ वेदव्यासजीका लिखा हुआ है या नहीं, कहाँतक युक्तियुक्त है?

व्यवहारकी शुद्धिसे परमार्थकी सिद्धि

(ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्द गिरिजी महाराज)

मानवका यदि व्यवहार शुद्ध है, तो परमार्थ शुद्ध ही है, ऐसा मानना चाहिये। व्यवहारको शुद्ध करनेके लिये जीवनमें सावधान रहना पड़ता है। भगवद्गीतामें बताये गये तपोंको करनेसे मनुष्यका व्यावहारिक जीवन शुद्ध होता है। शतांशरूपमें भी जब व्यवहाररूपसे शुद्ध होनेका प्रयत्न होता है, तो मानवको उसके लिये अन्यान्य साधना और तपश्चर्या नहीं करनी पड़ती, वह तपश्चर्या सहज रूपसे हो जाती है। उस व्यक्तिकी यह भावना भी नहीं रहती कि मैं कोई तप कर रहा हूँ, क्योंकि वह जीवनका सहज अंग बन जाती है। जीवनमें जो कुछ भी सहज है, वह स्थायी होता है, जो कृत्रिम होता है, उसे धारण करनेकी चेष्टा करनी पड़ती है। कृत्रिमता बार-बार विकृत होती है और सहजतामें कभी कोई दूषण नहीं आता है।

जगत्में रहना है, इसलिये जगत्का बाह्य व्यापार धारण करना पड़ता है, परंतु बाह्य व्यवहार, बाह्य प्रवृत्ति मानवके अन्तर जीवनमें धीरे-धीरे जानेकी वृत्ति हो, तो उससे बड़ा लाभ अपने जीवनमें ही मिल जाता है। मानव-जीवनकी सार्थकता भगवान्के भजनमें ही है। भगवान् वेदव्यासजी कहते हैं कि मानवको सतत भजन करना चाहिये।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥

प्रातः और सायं जो भगवान्का भजन करते हैं। पूजा, अर्चना करते हैं, अच्छी बात है, परंतु विचार करें कि यदि प्रातः-सायंकालके मध्य भी क्रोध आता है, कामनाग्रस्त होते हैं, तो निश्चित मानिये कि धर्मका प्रभाव सम्पूर्ण जीवनको दिखलायी नहीं पड़ेगी। इसलिये, बहुत विचार करनेपर इस देशके वाङ्मयके सर्वोच्च मूर्धन्य, प्रज्ञावान् महर्षि वेदव्यासजीने कहा कि '**धर्मं भजस्व सततं**' धर्मका सतत सेवन करें, जीवनमें धर्मको धारण करनेकी चेष्टा करें, यही धर्मका भजन है। धर्म जब धारण किया जाता है, तब धर्म उस व्यक्तिको धारण करता है।

आप सत्संगके माध्यमसे सुनते हैं, पढ़ते होंगे कि धर्मके माध्यमसे एक सामान्य व्यक्तिने अपने भीतर बहुत बड़ी शक्ति जगा ली, जिसने किसी ब्राह्मण-कुलमें जन्म नहीं लिया। शबर जातिमें उत्पन्न शबरी भगवान् श्रीरामको अपनी कुटीमें बुला सकती है।

जो धर्म निरन्तर किया जाता है, उससे भगवान् भी निरन्तर जुड़े रहते हैं। अधर्मका आचरण करते समय यह विचार करें कि परमात्मा घट-घटवासी हैं, अन्तर्यामी हैं।

व्यक्तिके अपने पापाचरणके कारण ही उसकी आँखोंपर एक ऐसी पट्टी बँध जाती है कि व्यक्ति परमेश्वरको भी सर्वद्रष्टा नहीं मानता। अपने मनसे ही पूछें कि क्या यह धर्मसम्मत है? जब यह नित्य पूछना प्रारम्भ कर देंगे, तो आपको उत्तर भी मिलेगा और समाधान भी।

परमात्माने प्रत्येक व्यक्तिके पास अपना एक 'प्रतिनिधि' छोड़ा है। जैसे सरकार अपने किसी व्यक्तिको दूसरे देशमें भेजती है। व्यक्तिके भीतर विवेक ही परमात्माका प्रतिनिधि है। अलग-अलग क्षेत्रोंमें आप देखेंगे कि परमात्माका प्रतिनिधि बहुत सजग रहता है। मनुष्य कभी जागरूक नहीं रह पाता, परंतु परमात्माका प्रतिनिधि विवेक हमें बार-बार जाग्रत् करता है।

मानव-मनमें पहला विचार बुराईके रूपमें जागता है, परंतु दूसरा विचार, उसके विवेकके कारण आता है कि यह

पहली-पहली बार ही होता है। आप विवेकका सम्मान न भी कर सकें तो भी वह मानवको सचेत करता है। जबकि कोई व्यक्ति बार-बार आये और उसका आप सम्मान नहीं करें तो कुछ दिनोंके बाद उसके मनमें भी उदासीनता जागती है कि मैं इतना प्रेम करता हूँ, उदारता बरतता हूँ, परंतु यह मेरी ओर देखता भी नहीं तो वह आना बन्द कर देता है। लेकिन विवेक निरन्तर जागता रहता है। वह मानवको सचेत करता भी है, परंतु जब मानव अपने ही विवेकका बार-बार अनादर करता है, तब हमारा मन ही विवेकपर नियन्त्रण करने लगता है।

आद्य शंकराचार्यसे उनके ही किसी प्रिय यतिने प्रश्न किया कि संसारमें सबसे बड़ा विजयी कौन है, '**जितं जगत्केन**' भगवत्पाद शंकराचार्यने उत्तर दिया—'**मनो हि येन**' जिसके द्वारा मन जीता गया है, वही इस संसारमें विजयी होता है। हम लोग संसारके बड़े-बड़े महापुरुषोंकी कथाएँ सुनते हैं, इतिहासके पृष्ठोंमें ऐसे सम्राट् हुए, जिन्होंने अपने देशका गौरव बढ़ाया। कुछ कालके बाद वे समाप्त हो जाते हैं। कभी-कभी प्राचीन सम्राटोंके भवनोंको स्मारकोंको देखता हूँ कि बहुत सजाकर रखी वे सभी वस्तुएँ, जिनका वह उपयोग करता था, लेकिन उन्हें देखकर कोई बहुत प्रेरणा नहीं मिलती, शान्ति नहीं मिलती, लेकिन व्यथित मनके व्यक्तिको जब उसे शान्त करनेका दूसरा मार्ग नहीं मिलता है, तब किसी महापुरुष, तपस्वीके ग्रन्थके स्वाध्यायसे उसके मनकी चंचलता धीरे-धीरे शमित होने लगती है। विचार करनेकी बात यह है कि लेखक तो बहुत हुए, परंतु उनकी लेखनीसे निकले हुए विचार मानवको उतना प्रभावित नहीं कर पाते, जितने किसी तपस्वी और मनोजयी मानवके विचार प्रभावित करते हैं।

रामकी कथा भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने लिखी, जिसे भिन्न-भिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न प्रकारसे कहते हुए आनन्द लेते हैं और श्रोता भी आनन्दित होते हैं।

तुलसीदासजीने ऐसा अद्भुत ग्रन्थ लिखा; विचार करें कि उन्होंने ऐसा ग्रन्थ कैसे लिखा? वे जीवनकी उत्तरावस्थातक निरन्तर घूमे, सारे संसारको अच्छी तरह देखा। जब पूर्णरूपसे निश्चिन्त हुए, तब लिखा कि—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

उन्होंने कहा कि सुर, नर, मुनि और इतने योनिके आप संसारमें रहें, देखें कि संसारमें रहते हुए सभी किसी-न-किसी स्वार्थकी प्रीतिरज्जुसे बँधे हुए हैं। यदि कोई सच्ची प्रीति करता है, बिना स्वार्थके प्रेम करता है, तो वह केवल परमात्मा है। इसलिये गोस्वामीजी लिखते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।

परमात्मा जो प्रदान करता है, उसका कोई हेतु नहीं है उसकी प्रीति स्थायी प्रीति है। उस स्थायी प्रीतिको प्राप्त करनेके अनेक उपाय यहाँके महापुरुषोंद्वारा किये जा रहे हैं हम श्रवण तो बहुत करते हैं, परंतु व्यवहारमें नहीं ला पाते जब व्यवहारकी शुद्धि नहीं होती, धर्मकी उपयोगिता कम होती चली जायगी। धर्म केवल श्रवणका विषय रह जायगा, तो मानवको सच्ची ऊर्जा नहीं मिल पायेगी।

महर्षि वेदव्यासजी कहते हैं कि धर्म कभी-कभी पालन करनेका विषय नहीं है। '**धर्मं भजस्व सततं**' धर्मको निरन्तर भजना चाहिये।

कर्म करनेसे पूर्व नित्य पूछना चाहिये कि यह कर्म धर्मसम्मत है? पहलेका मनुष्य यह सब अपनेसे पूछता था उसके अनुसर अन्तरसे जो आदेश मिलता, उसके आधारपर जीवन जीनेकी चेष्टा करता। जब प्रत्येक व्यक्ति सजग था, तब समाज अपने-आप सजग दिखलायी पड़ता था। आज भी कुछ हैं—कोई शंकराचार्यके उपासक हैं, कोई रामानन्दाचार्यके, कोई कबीरके उपासक हैं, कोई महात्मा गाँधीके, उन महापुरुषोंके जीवनसे प्रेरणा लेनेवाले थोड़ेसे लोग होते हैं यदि वे किसी दूसरेको अच्छा जीवन जीनेकी बात कहते हैं, तो उत्तर मिलता है कि मेरा जीवन अपना जीवन है, इसमें आप सुझाव देनेवाले कौन होते हैं? लेकिन पुराकालमें कोई श्रेष्ठ व्यक्ति अच्छा आचरण जीनेकी बात कहता, तो दूसरा व्यक्ति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहता कि आपने मुझे गलत मार्गपर जानेसे बचाया, एक सही रास्ता दिखाया व्यक्ति अपना कल्याण करता था और अपने व्यवहारसे दूसरेको भी बुराईसे बचाता था। आपने कहते सुना होगा कि यह व्यक्ति तो भगवान् है, बहुत अच्छा है, इससे कुछ ऐसी बात नहीं करें। ऐसा उसीके प्रति कहा जाता है जो नित्य धर्मके साथ जीवन जीनेकी चेष्टा करता है।

संसारमें लोक-धर्म बहुत हैं, उन सबको नहीं जिया जा सकता। कुछ लोक-धर्मका पालन किया जा सकत

जो व्यक्तिके लिये, समाजके लिये हानिकारक हैं, परंतु देखा-देखीके कारण उन वस्तुओंका परित्याग नहीं कर पाता, ऐसी बुराइयोंको परित्याग करनेमें सक्षम होना चाहिये। सामाजिक दोषोंको दूर करना भी कर्तव्य है। धर्म समाजसे अलग होनेकी बात नहीं कहता। वह हिमालयकी चोटीपर नहीं बैठाता। यदि बैठाना चाहे तो भी, सबको नहीं बैठा सकता; क्योंकि चोटीपर कितने लोग बैठ सकते हैं।

समाजमें बैठकर ही समाजकी बुराइयोंको दूर किया जा सकता है। समाजसे अलग होकर नहीं। यह कार्य धर्मसे ही सम्भव है। धर्म समाजके लिये है। यदि धर्म समाजको स्वीकार न करे, तो धर्म एकान्तिक हो जायगा और यदि समाज धर्मको स्वीकार न करे, तो धर्मके तत्त्व संग्रहणीय होंगे या विद्वानोंके प्रवचनोंके रूपमें ही रह जायँगे। इसलिये समाज और धर्म—दोनोंको जुड़ना चाहिये। इसी कारण, पाँच हजार वर्ष पूर्व महर्षि वेदव्यासजीने धर्मका भी चिन्तन किया और समाजका भी चिन्तन किया। राजनीति, समाज और धर्म अलग-अलग नहीं गिने जाते थे, क्योंकि उस समय राजनीति करनेवाला व्यक्ति किसी धर्माचरणसम्पन्न व्यक्तिसे अपना नाता जोड़कर रखता था। चाणक्यके पास चन्द्रगुप्त जाता था। भगवान् श्रीराम वसिष्ठजीसे प्रेरणा लेते। युधिष्ठिर आदि धौम्य ऋषिके पास जाते थे। प्रत्येक राजनीतिज्ञ व्यक्ति धार्मिक व्यक्तिसे प्रेरणा लेता था। इससे उसे लगता था कि मैं यदि महापुरुषके पास जाऊँगा, तो कोई असत् बात की होगी, तो कहना पड़ेगा। सात्त्विक भय मनमें रहता था। जो भय ऊपरसे आता है, वह कानूनोंसे आता है उसमें दण्डकी व्यवस्था होती है। धर्मके आधारपर आया हुआ भय, भय नहीं होता, बल्कि जीवनको चलानेकी व्यवस्था होती है। एक जीवन-प्रणाली होती है, जिसे स्वीकार करनेमें व्यक्तिको जरा भी कष्ट नहीं होता है। कुछ लोग कहते हैं कि समाजमें, राजनीतिमें धर्मकी क्या जरूरत है? जिस समाजमें हम रहते हैं, वे सब व्यक्ति धर्मका पालन कर रहे हैं। यदि हमने धर्मका पालन किया, तो जिन्दा नहीं रह सकते। सूर्यका धर्म है उष्णता प्रदान करना। भगवान् भास्करने कभी नहीं सोचा कि आजका व्यक्ति धर्म नहीं मानता है, उनके ऊपर आक्रोश करनेके लिये 'मैं भी धर्मका परित्याग करता हूँ।' चन्द्रमा अपनी शीतलताक परित्याग नहीं करता। जल तरलता धर्मका, पृथ्वी गन्ध धर्मका परित्याग नहीं करती, पवन स्पर्श धर्मका परित्याग नहीं करता। परमात्माद्वारा प्रदत्त पंचभूत कभी अपने धर्मका परित्याग नहीं करते, जीवका रक्षण करते हैं।

संसारमें कुछ धर्महीन मानव, विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें सम्मान, आदर मिल जाता है, बाहरी दृष्टिसे प्रसन्न, सुखी दिखायी पड़ते हैं, तब धर्माचरणसे जीनेवाले सदाचारी व्यक्तिके मनमें भ्रम उत्पन्न हो जाता है, एक व्यामोह जागता है कि अरे! यह पाप करनेवाला, सम्मानपूर्वक जी रहा है? उसका कुछ नहीं बिगड़ा तो हमारा क्या बिगड़ जायगा? अमुक व्यक्ति धर्मका बहुत पालन करता है, लेकिन उसकी झोपड़ी भी अच्छी नहीं है। अच्छे वस्त्र कभी पहन ही नहीं पाया। वह दोनों ओर समाजको देखता है, तब सोचता है कि हमें भी ऐसा करना चाहिये, परंतु विचार यह करना है कि जो बढ़ रहा होगा, वह थोड़ा-बहुत बढ़ रहा होगा। रावण, दुर्योधनकी ओर क्यों नहीं देखते; वे भी बहुत बढ़ रहे थे। शास्त्र कहता है कि कभी-कभी पूर्वजन्मके पुण्य शेष होते हैं। उसके कारण बढ़ता हुआ दिखलायी दे रहा है। लोग समझते हैं कि पापाचारी बढ़ रहा है। इतनी सारी सम्पत्ति मिल गयी है कि तीनों लोकोंमें कोई दिखलायी नहीं देता। कुटुम्ब भी बढ़ रहा है।

अरे, मेरे बन्धु! यह सब आप देख तो रहे हैं, परंतु जैसे ही शेष पुण्य क्षीण होगा, तुरन्त वैसे ही धराशायी हो जायगा, जैसे कभी था ही नहीं।

विचार करके देखें, क्या कभी ऐसा सम्भव है? यदि ऐसा सम्भव होता, तो धर्माचरण करनेवाले महापुरुष कभीके इस धरतीसे पलायन कर गये होते और इस धरतीपर पापाचरणका ही ताण्डव होता रहता।

धर्म शाश्वत है। मानव-जीवन और सामाजिक जीवनका अपरिहार्य अंग धर्म है। मानव-जीवनका आनन्द, सरसता और समाजका सन्तुलन धर्मसे ही है। हमार व्यावहारिक जीवन जितना धर्ममय होगा, धर्मसे युक्त होगा—इस धरतीपर उतनी ही पवित्रता, निर्मलता, सौहार्द और प्रेम होगा। इसलिये धर्म एककालिक या परिस्थितिजन्य नहीं, सदैव आचरणीय है।

सब फल ईश्वर ही देता है

(नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

यदि हमें सुख-शान्तिकी अभिलाषा है, तो हमारा सर्वप्रथम यही कर्तव्य होना चाहिये कि हम सर्वतोभावेन ईश्वरका आश्रय ग्रहण करें और उनके बलपर शान्तिके मार्गपर आगे बढ़ें। यह स्मरण रखना चाहिये कि सुख-शान्तिका स्रोत भगवान्‌के चरणोंसे ही निकलता है। हमें किसी अन्य उपायसे—साधनसे या किसी अन्य देवताकी उपासनासे—जो सुख या सुखोत्पादक भोग मिलते हैं, वे भी वहींसे आते हैं, कारण, खजाना वहीं है। और जिस पदार्थ, मनुष्य या देवतासे मनुष्य विषयोंको प्राप्त करता है, वह पदार्थ, मनुष्य या देवता भी वस्तुतः भगवान् ही है। भगवान्‌ने गीता (७। २०—२२)-में कहा है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान्हि तान्॥

'विषयासक्त मनुष्य विषय-भोगोंकी कामनासे ज्ञानसे रहित हो जाते हैं और विषयोंकी प्राप्तिके लिये अपने-अपने स्वभावानुसार भाँति-भाँतिके नियम धारण करते हुए अन्य देवताओंको पूजते हैं। जो भक्त देवताके रूपमें मेरे ही जिस स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उसकी मैं उसी स्वरूपमें श्रद्धा स्थिर कर देता हूँ, फिर वह मनुष्य श्रद्धाके साथ उसी देवताकी आराधना करता है और उसीके फलसे उक्त देवस्वरूपके द्वारा उसे इच्छित वस्तुएँ मिल जाती हैं, परंतु मिलती है मेरे विधानके अनुसार ही यानी उतनी ही, जितनी मेरे उक्त देवस्वरूपके अधिकारमें होती है और जितनी प्रदान करनेका उसका अधिकार होता है।'

एक आदमी किसी जिलेके अफसरकी सेवा करके उसे प्रसन्न करता है, जिलाधीश प्रसन्न होकर उसे उतना ही पुरस्कार दे सकता है, जितना देनेका उसको सरकारसे अधिकार मिला हुआ होता है और वह देता भी है राज्यके कोषसे ही। वह जिलाधीश राजाका प्रतिनिधि राजसत्ताका एक अंग है, राज्य-शरीरका एक अवयव है, इससे उसकी पूजा एकान्तरसे राज्याधीश नरेशकी ही पूजा होती है, परंतु वह एक क्षुद्र जिलेके अफसरके रूपकी होती है, इससे उसे वह फल नहीं मिल सकता, जो स्वयं राजाकी सीधी पूजासे मिल सकता है। जिलाधीशका पुजारी राजाके महलका अन्तरंग सेवक नहीं बन सकता, परंतु राजाका सेवक महलके अन्दर जानेका अधिकारी हो जाता है '**मद्भक्ता यान्ति मामपि।**' भगवान्‌ने आगे कहा भी है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

(गीता ९। २३)

'अर्जुन! श्रद्धालु भक्त जो किसी फल-सिद्धिके लिये दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी वस्तुतः मेरी ही पूजा करते हैं; क्योंकि वे देव-स्वरूप भी मेरे ही हैं, परंतु उनकी वह पूजा अविधिपूर्वक होती है।' भगवान् ही सबके आधार, संचालक, फलदाता, फलभोक्ता, स्वामी हैं, इस बातको नहीं जाननेके कारण ही मनुष्य भगवान्‌को छोड़कर सुखके लिये अन्य देवताओंका एवं अन्यान्य जड़ उपायोंका आश्रय लेते हैं। इसीसे वे बार-बार दुःखोंमें गिरते हैं '**च्यवन्ति ते।**' देवताओंके उपासक देवलोकमें तो जा सकते हैं, परंतु ईश्वरके अस्तित्वको न मानकर जड़ प्रकृतिके या केवल अर्थके उपासकोंकी तो बहुत बुरी गति होती है, चाहे वह अर्थोपासना व्यक्तिगत सुखके लिये हो या जाति अथवा राष्ट्रके हितकी कामनासे हो। जहाँ ईश्वरको भुलाकर केवल अर्थ-लाभसे सुख, समृद्धि और अभ्युदयकी इच्छा और चेष्टा होगी, वहाँ पाप-पुण्य या सत्कर्म-दुष्कर्मका विचार नहीं रहेगा, व्यक्तिगत स्वार्थके लिये दूसरे व्यक्तिका और जाति या राष्ट्रके स्वार्थके लिये दूसरी जाति या राष्ट्रका सर्वनाश करनेमें कुछ हिचकिचाहट नहीं होगी, मनुष्य स्वार्थसे अन्धा हो जायगा, परिणाममें उसे अन्धतम गति ही मिलेगी! आजके मनुष्यों, जातियों और राष्ट्रोंमें इसी भावका पोषण हो रहा है और इसीसे द्वेष, वैर, हिंसा और हत्याओंकी संख्या बढ़ रही है। ईश्वररहित अहिंसा या सत्य भी शीघ्र ही विकृत होकर प्रकारान्तरसे हिंसा और असत्यका रूप धारण कर लेते हैं; अभिमान, ईर्ष्या, दर्प, असहिष्णुता आदि दोष तो सद्‌गुणका बाना पहनकर बढ़ते रहते ही हैं। भगवद्भक्तिसे शून्य केवल कुछ बाह्य आचरणोंसे सिद्धि, सुख और शान्ति नहीं मिल सकती।

साधकोंके लिये करणीय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

❀ साधकको अपना जीवन सर्वथा भगवान्‌के समर्पण कर देना चाहिये। उसकी ऐसी सद्भावना होनी चाहिये कि 'मेरा जीवन भगवान्‌के लिये है। मुझे उनका न होकर एक क्षणभर भी नहीं जीना है। भगवान् मुझे अपना मानें चाहे न मानें, पर मैं कभी किसी दूसरेका होकर नहीं रहूँगा।'

❀ साधकको चाहिये कि प्रतिदिन शयनके पूर्व भलीभाँति अपने सारे दिनके जीवनका प्राप्त विवेकके द्वारा निरीक्षण करे अर्थात् किन-किन दोषोंका किन-किन कारणोंसे कितनी बार दिनभरमें मुझपर आक्रमण हुआ। उस निरीक्षणसे जो असावधानी समझमें आये, उसे त्यागनेका दृढ़ संकल्प करे और उस दोषके विपरीत भावकी अपनेमें स्थापना करे। यदि मिथ्या बोल दिया हो तो जिस प्रलोभनसे वह दोष हुआ है, उसकी तुलना सत्य-भाषणकी महिमाके साथ करके अपने मनको समझाये ताकि पुनः वह किसी प्रकारके प्रलोभनसे आकर्षित न हो तथा यह संकल्प करे कि 'मैं मिथ्यावादी नहीं हूँ। अब कभी भी मैं झूठ नहीं बोलूँगा।' इसी प्रकार काम, क्रोध आदि हर एक दोषोंके विषयमें समझना चाहिये।

❀ प्रातः उठनेके पश्चात् जिस-जिस कार्यमें प्रवृत्त हो, उससे पूर्व विवेकपूर्वक भलीभाँति निर्णय कर ले कि मेरे द्वारा जो कार्य होने जा रहा है, उससे किसीका अहित या किसीके अधिकारका अपहरण तो नहीं हो रहा है।

❀ यदि सम्भव हो तो सात दिनमें एक बार, जिनसे स्वभाव मिलता हो—ऐसे सत्संगी भाइयोंके साथ बैठकर आपसमें विचार-विनिमय करे और उनके सामने अपने दोषोंको बिना किसी संकोच तथा छिपावके स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर दे तथा उनको हटानेके लिये उनसे परामर्श ले। ऐसा करनेसे साधकके दोष शीघ्र ही मिट सकते हैं।

❀ साधकको चाहिये कि प्राप्त शक्तिके द्वारा प्रभुके नाते दूसरोंके अधिकारकी पूर्ति करता रहे और किसीपर अपना कोई अधिकार न समझे। शरीर-निर्वाहके लिये आवश्यक पदार्थोंको भी दूसरोंकी प्रसन्नताके लिये, उनके अधिकारको सुरक्षित रखनेके लिये ही स्वीकार करे, जो कि लेनेके रूपमें भी देना ही है, क्योंकि इस शरीरसे जिनके अधिकारकी पूर्ति होती है, उनका ही तो इसपर अधिकार है।

❀ साधकको चाहिये कि उसने संसारसे जो कुछ लिया है, वह वापस लौटाकर अर्थात् प्राप्त हुई सम्पत्ति और शक्तिके द्वारा उसकी सेवा करके उससे उऋण हो जाय तथा उससे कुछ ले नहीं एवं अपने-आपको भगवान्‌के समर्पण करके अर्थात् उनका होकर भगवान्‌से उऋण हो जाय। इस प्रकार जब उसपर किसीका ऋण नहीं रहता, तब अन्तःकरण अपने-आप परम पवित्र हो जाता है।

❀ साधकको चाहिये कि संयोगकालमें ही उसके वियोगका दर्शन करके किसी भी व्यक्ति, पदार्थ, देश, काल या परिस्थितिमें आसक्त न हो एवं किसीको अपने सुखका आधार न माने। दृश्यमात्रसे सर्वथा असंग हो जाय।

❀ साधकको विचार करके निश्चय करना चाहिये कि जो कुछ भी देखने, सुनने और अनुभव करनेमें आता है, शरीर, बुद्धि, मन, इन्द्रियोंके सहित किसी भी दृश्य पदार्थसे मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि न तो मेरी और इनकी जातीय एकता है और न स्वरूपकी ही एकता है। अतः इनका और मेरा सम्बन्ध वास्तविक नहीं है। अज्ञानसे माना हुआ है। मैं इनसे सर्वथा असंग नित्य चेतन हूँ। ये सब-के-सब अनित्य और पर-प्रकाश्य हैं।

❀ साधकको चाहिये कि वह दोष-दर्शनको सर्वथा त्याग दे; क्योंकि दोष करनेकी अपेक्षा दोषोंका चिन्तन अधिक पतन करनेवाला है। दोषोंको क्रियारूपमें करनेमें तो बहुत कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, परंतु दोषोंके चिन्तनमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं प्रतीत होती। इस कारण उनके चिन्तनमें रस लेनेकी आदत स्वाभाविक-सी हो जाती है।

साधकोंके प्रति—

पापका बाप

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक प्रसिद्ध कहानी है—एक पण्डितजी काशीसे पढ़कर आये। ब्याह हुआ, स्त्री आयी। कई दिन हो गये। एक दिन स्त्रीने प्रश्न पूछा कि 'पण्डितजी महाराज! यह तो बताओ कि पापका बाप कौन है?' पण्डितजी पोथी देखते रहे, पर पता नहीं लगा, उत्तर नहीं दे सके। अब बड़ी शर्म आयी कि स्त्री पूछती है पापका बाप कौन है? हमने इतनी पढ़ाई की, पर पता नहीं लगा। वे वापस काशी जाने लगे। मार्गमें ही एक वेश्या रहती थी। उसने सुन रखा था कि पण्डितजी काशी पढ़कर आये हैं। उसने पूछा—'कहाँ जा रहे हैं महाराज?' तो बोले—'मैं काशी जा रहा हूँ।' काशी क्यों जा रहे हैं? आप तो पढ़कर आये हैं? तो बोले—'क्या करूँ? मेरे घरमें स्त्रीने यह प्रश्न पूछ लिया कि पापका बाप कौन है? मेरेको उत्तर देना आया नहीं। अब पढ़ाई करके देखूँगा कि पापका बाप कौन है?' वह वेश्या बोली—'आप वहाँ क्यों जाते हो? यह तो मैं यहीं बता सकती हूँ आपको।'

बहुत अच्छी बात। इतनी दूर जाना भी नहीं पड़ेगा। 'आप घरपर पधारो। आपको पापका बाप मैं बताऊँगी।' अमावस्याके एक दिन पहले पण्डितजी महाराजको अपने घर बुलाया। सौ रुपया सामने भेंट दे दिये और कहा कि 'महाराज! आप मेरे यहाँ कल भोजन करो।' पण्डितजीने कह दिया—'क्या हर्ज है, कर लेंगे।' पण्डितजीके लिये रसोई बनानेका सब सामान तैयार कर दिया। अब पण्डितजी महाराज पधार गये और रसोई बनाने लगे तो वह बोली—'देखो, पक्की रसोई तो आप पाते ही हो, कच्ची रसोई हरेकके हाथकी नहीं पाते पक्की रसोई मैं बना दूँ, आप पा लेना!' ऐसा कहकर सौ रुपये पासमें और रख दिये। उन्होंने देखा कि पक्की रसोई हम दूसरोंके हाथकी लेते ही हैं, कोई हर्ज नहीं, ऐसा करके स्वीकार कर लिया।

अब रसोई बनाकर पण्डितजीको परोस दिया। सौ रुपये और पण्डितजी महाराजके आगे रख दिये और नमस्कार करके बोली—'महाराज! जब मेरे हाथसे बनी रसोई आप पा रहे हैं तो मैं अपने हाथसे ग्रास दे दूँ हाथ तो वे ही हैं, जिनसे रसोई बनायी है, ऐसी कृपा करो।' पण्डितजी तैयार हो गये उसकी बातपर। उसने ग्रासको मुँहके सामने किया और उन्होंने ज्यों ही ग्रास लेनेके लिये मुँह खोला कि उठाकर मारी थप्पड़ जोरसे, और वह बोली—'अभीतक आपको ज्ञान नहीं हुआ? खबरदार! जो मेरे घरका अन्न खाया तो! आप-जैसे पण्डितको मैं धर्मभ्रष्ट करना नहीं चाहती। यह तो मैंने पापका बाप कौन है, इसका ज्ञान कराया है।' रुपये ज्यों-ज्यों आगे रखते गये, पण्डितजी ढीले होते गये

इससे सिद्ध क्या हुआ? पापका बाप कौन हुआ? रुपयोंका लोभ! '**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः**' (गीता १६। २१)। काम, क्रोध और लोभ—ये नरकके खास दरवाजे हैं।

प्रेरक-प्रसंग—

सादा जीवन, उच्च विचार

एक दिन एक सम्पन्न व्यक्ति श्रीगोपालकृष्ण गोखलेजीके दर्शनोंके लिये उनके निवासस्थानपर पहुँचा। उसने देखा कि गोखलेजी अपना फटा कुरता स्वयं सूईसे ठीक कर रहे हैं। यह देखकर उसने कहा—आप-जैसा अग्रणी नेता फटे-पुराने कपड़ेको ठीक करनेमें समय क्यों नष्ट कर रहा है, यह सोचकर मैं हतप्रभ हूँ!

गोखलेजीने विनम्रतासे उत्तर दिया—कर्मकी उच्चता तथा सादगीका जीवन ही हम भारतीयोंके बड़प्पनकी कसौटी है, न कि अच्छे कपड़े या कीमती आभूषण धारण करना। मैंने पैसा-पैसा बचाकर उसे भारतकी स्वाधीनताके कार्योंमें खर्च करनेका संकल्प लिया हुआ है। इससे मुझे अनूठा सन्तोष मिलता है।

रामकथाके वक्ता एवं श्रोता

(श्रीशिवदत्तजी पाण्डेय, साहित्याचार्य)

'श्रीरामचरितमानस' एक ऐसी दिव्य मणिमाला है, जिसमें भगवान् श्रीरामके आदर्श जीवनचरित्रकी अनुपम लड़ियाँ पिरोयी हुई हैं और जो जन-जनका कंठहार बनी हुई है। रामकथामृतपिपासु भक्तजनों अथवा सत्संगप्रेमियोंके मध्य रामायणकी कथाकी चर्चा होते समय प्राय: यह लोकप्रचलित प्रश्न उठा करता है कि किन-किन वक्ताओंने किन-किन श्रोताओंको रामकथा सुनायी थी तथा इन वक्ताओं और श्रोताओंका परम्परागत उचित कालक्रम क्या है? रामकथाके आदि वक्ता और श्रोता कौन थे? यहाँ इन प्रश्नोंका सम्यक् विवेचन कविचक्रचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास-प्रणीत ग्रन्थरत्न 'श्रीरामचरितमानस' की पृष्ठभूमिपर करनेका प्रयास किया जा रहा है—

त्रेतायुगमें जब भगवान् शंकर कैलासपर्वतपर सतीजीके साथ निवास कर रहे थे, उसी समय उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि महर्षि अगस्त्यके श्रीमुखसे रामकथाका रसपान करनेहेतु दण्डकारण्यके लिये प्रस्थान किया जाय। 'शुभस्य शीघ्रं' ऐसा सोचकर अपने साथ जगदम्बा भवानी सतीको लेकर वे महर्षि अगस्त्यके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रुककर शिवजीने महर्षि अगस्त्यसे परमपावनी रामकथाका आस्थापूर्वक श्रवण किया।

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥

(रा०च०मा० १। ४८। १—३)

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हो जाता है कि रामकथाके आदिवक्ता महर्षि अगस्त्य एवं आदि (प्रथम) श्रोता स्वयं आशुतोष भगवान् शिवशंकर हैं।

रामकथाके द्वितीय एवं तृतीय वक्ता एवं श्रोताके विषयमें जाननेके लिये हम आपको उत्तरकाण्ड (दोहा ११२ (ख) के आगे)-की ओर ले चलते हैं। लोमश वृक्षकी शीतल छायामें निवास करते थे। वहीं उनक आश्रम था। काकभुशुण्डि जब उनके आश्रममें पहुँचे, उस समय वे ब्राह्मणशरीरमें थे और रामके सगुणोपासक थे। वे लोमश ऋषिसे सगुण ब्रह्मकी उपासनाकी विधि समझनेके प्रयोजनसे वहाँ गये हुए थे। लोमश ऋषिको उनका सगुण ब्रह्मचिन्तन अभीष्ट नहीं था। अत: उन्होंने सगुणोपासना मतका खण्डन करके निर्गुण-उपासनाक पक्ष प्रस्तुत किया। वे दोनों एक-दूसरेके मतका खण्डन करने लगे। फलत: लोमश ऋषिने अपने मतका खण्डन देखकर तथा क्रुद्ध होकर उस ब्राह्मणको चाण्डाल पक्षी (काक) हो जानेका शाप दे दिया। ब्राह्मण तुरन्त काक शरीर पा गया। तभीसे वे काकभुशुण्डि कहलाने लगे किन्तु बादमें लोमशजीको, काकभुशुण्डिजीकी विनम्रत देखकर, उनपर दया आ गयी और उन्होंने काकभुशुण्डिको कुछ समयके लिये अपने आश्रममें रखकर अतिशय पावनी रामकथाका श्रवण कराया, किन्तु इससे पूर्व लोमशजी इस भवभयहारिणी रामकथाको भगवान् शिव शम्भुसे श्रवण कर चुके थे। लोमश ऋषिके आश्रमसे जानेके पश्चात् काकभुशुण्डिजी अपने आश्रम (नीलगिरि)-में गरुड़जीको अपना अतीत बता रहे हैं—

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा।
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई।
रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा।
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी।

(रा०च०मा० ७। ११३। ९—१२)

उपर्युक्त काकभुशुण्डिके कथनसे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि रामकथाके द्वितीय वक्ता एवं श्रोता क्रमश: भगवान् शंकर एवं लोमश ऋषि हैं।

तृतीय वक्ता एवं श्रोता क्रमश: लोमश ऋषि एवं काकभुशुण्डिजी हैं। श्रवणका स्थान मेरुगिरि है।

रामकथाश्रवणके चतुर्थ उपक्रमका मानसमें इस प्रकार वर्णन है—सतीके वियोगमें भगवान् शिव विरक्तभावसे

नीलगिरि जा पहुँचे। उसी नीलगिरिमें ही काकभुशुण्डि निवास करते हुए रामचरित्रका नित्य-निरन्तर सादर गान किया करते थे। उनकी रामकथाको सुननेके लिये नाना प्रकारके विहंगवर वहाँ नित्य आया करते थे। वहाँका परम पवित्र रमणीक स्थल देखते ही भगवान् शिव पुलकित हो उठे और वहाँ उन्होंने हंसरूपमें स्थित होकर बहुत दिनोंतक रामकथा-पीयूष-रसका पान किया।

भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं—

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥

(रा०च०मा० ७।५७)

इस प्रकार रामकथाके चतुर्थ वक्ता एवं श्रोता काकभुशुण्डिजी एवं मरालरूपधारी भगवान् शिव हैं।

रामकथाके वक्ता और श्रोताकी कालक्रमागत-परम्परामें क्रमसंख्या पंचमका भी वर्णन उत्तरकाण्डमें ही है, जहाँ शिवजी गरुड़जीका मोहभंग करनेके लिये उन्हें नीलगिरिमें काकभुशुण्डिजीके पास भेजते हैं—

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥

(रा०च०मा० ७।६२।५)

भगवान् शिवका निर्देश शिरोधार्य करके गरुड़जी काकभुशुण्डिके पास (नीलगिरि) पहुँचते हैं। इस प्रसंगको भगवान् शंकर गिरिजाजीको सुना रहे हैं—

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥

(रा०च०मा० ७।६३।१)

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥
गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥

(रा०च०मा० ७।६८।७-८, ६८ (क))

सुनि भसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥

(रा०च०मा० ७।११५।५)

इस सम्पूर्ण काकभुशुण्डि-गरुड़-संवादको शिवजीने उमाजीको यथावत् सुनाया था। इस प्रकार पाँचवें वक्ता काकभुशुण्डिजी तथा श्रोता गरुड़जी हुए और छठवें

बालकाण्डकी ये चौपाइयाँ द्रष्टव्य हैं—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।

(रा०च०मा० १।३५।११)

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।

(रा०च०मा० १।३०।३)

शिवजीने कैलासपर पार्वतीजीको ठीक वही रामचरित सुनाया, जो उनके ठीक पहले काकभुशुण्डिजी गरुड़जीको सुना चुके थे। शिवजी भवानी (पार्वती)-से कहते हैं—

सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़॥

(रा०च०मा० १।१२० (ख))

केवल इतना ही नहीं, अपितु पार्वतीजीने शिवजीसे वही प्रश्न और वही जिज्ञासा व्यक्त की, जो उनके पहले गरुड़जीने नीलगिरिमें काकभुशुण्डिसे व्यक्त की थी—

ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहउँ सुनहु उमा मन लाइ॥

(रा०च०मा० ७।५५)

रामकथाका व्याख्यान और श्रवण करनेका सप्तम ऐतिहासिक कालक्रम जाननेके लिये बालकाण्डके प्रारम्भिक पृष्ठ पलटने पड़ेंगे, जहाँपर यह बताया गया है कि शिवजीने जिस रामचरित्रको पहले उमाजीको सुनाया था, उसी रामचरित्रको पुनः काकभुशुण्डिजीको भी सुनाया—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा।

(रा०च०मा० १।३०।३-४)

यहाँपर विशेष ध्यान देनेयोग्य है कि अबतक भगवान् शिव रामकथाको तीन श्रोताओं क्रमशः लोमश, पार्वती और काकभुशुण्डिको सुना चुके हैं।

और इसी प्रकार अबतक भगवान् आशुतोष स्वयं एक श्रोताके रूपमें इस भवभयहारिणी रामकथाका रसपान दो बार कर चुके हैं, पहले अगस्त्य ऋषिके मुखसे तथा बादमें मरालरूप धारण करके नीलगिरिपर काकभुशुण्डिके मुखसे।

रामकथाके आठवें क्रममें काकभुशुण्डिजीने महर्षि

ऋषिको प्रयागमें सुनाया—

सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

(रा०च०मा० १।३०।४-५)

'तेहि सन'—उनसे अर्थात् काकभुशुण्डिजीसे उस रामकथाको महर्षि याज्ञवल्क्यने प्राप्त किया। उसी रामकथाका गान याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाज ऋषिसे किया। याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाज ऋषिको वही रामकथा सुनायी, जो भगवान् शिवने गिरिजाको सुनायी थी। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥

(रा०च०मा० १।१५३।१)

तथा—

कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥

(रा०च०मा० १।४७)

पहले क्रमसे नवें क्रमतकके सभी वक्ता और श्रोता त्रेतायुगके हैं। किंतु ये सभी वक्ता एवं श्रोता किस कल्पसे सम्बन्धित हैं तथा किस कल्पमें किस कारणसे भगवान्‌का अवतार हुआ, इसके विषयमें निश्चित रूपसे कोई मत स्थापित करना दुरूह विषय है। मानसकारने स्वयं इस दुरूहताको स्वीकार किया है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १।१२१।२)

जिस कल्पमें नारदको मोह उत्पन्न हुआ और उन्होंने भगवान् विष्णुको नरतन धारण करने और पत्नी-वियोगसे कष्ट पानेका शाप दिया था; साथ ही दोनों शिवगणोंको राक्षस (रावण-कुम्भकर्ण)हो जानेका शाप दिया था, उसी कल्पमें रामावतार हुआ, उसी कल्पमें ***'रचि महेस निज मानस राखा'*** ; उसी कल्पमें शिवजीने रामकथा लोमश ऋषिको सुनायी तथा लोमश ऋषिने काकभुशुण्डिको सुनायी थी। इससे सत्ताईस कल्प बीतनेके पश्चात् काकभुशुण्डिने वही कथा गरुड़जीको सुनायी था। उनको लोमशजीका आश्रम (मेरुगिरि) छोड़कर अपने आश्रममें रहते हुए सत्ताईस कल्प व्यतीत

इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा।

(रा०च०मा० ७।११४।१०)

किन्तु गरुड़जीके सुननेके पूर्व ही भगवान् शिव नीलगिरि जाकर हंसरूपमें वही रामकथा काकभुशुण्डिजीसे श्रवण कर चुके थे तथा इन सभी वक्ताओंद्वारा अपने प्रवचनमें नारद-मोहवाला प्रसंग सम्मिलित किया गया है।

जब 'श्रीरामचरितमानस' की पृष्ठभूमिपर वक्ताओं और श्रोताओंकी चर्चा हो रही है तो एक और भी वक्ता और श्रोताका युग्म अभी शेष रह जाता है, जिसके बिना बात आधी-अधूरी रह जायगी। वह है भगवान् श्रीरामके अनन्य एवं पूर्णसमर्पित भक्त युगद्रष्टा महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, जिन्होंने अपनी बाल्यावस्थामें ही वाराहक्षेत्र जाकर रामकथाका श्रवण किया था। उन्होंने गुरुका नाम यहाँपर नहीं प्रकट किया है—

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥
तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।

(रा०च०मा० १।३०(क), १।३१।१)

इस प्रकार रामकथाके वक्ता और श्रोताका दसवाँ युग्म 'गुरु' और उनके शिष्य (मानस-प्रणेता तुलसी) हैं। ये 'गुरु' स्वामी नरहरिदासजी ही हैं, जिनका उल्लेख महाकविने बालकाण्डके आरम्भमें ही कर दिया है—

'बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।'

(बालकाण्ड मंगलाचरण सोरठा ५)

इन्हींको नरहर्यानन्द या नरहरि स्वामीके नामसे जाना जाता है। इन्होंने ही तुलसीदासको अयोध्यामें निगमागम आदिका अध्ययन करवाया, रटवाया तथा राममन्त्रकी दीक्षा दी। इन्होंने ही तुलसीदासजीको वाराहक्षेत्र (शूकरक्षेत्र या सोरों)-में रामकथाका श्रवण कराया था, जिसका संकेत बालकाण्डके प्रारम्भमें ही अन्तर्साक्ष्यके रूपमें मिलता है। उपर्युक्त वक्ता और श्रोताका समय लगभग विक्रम सम्वत् १५६४ माना जाता है।

हरिकथा तो अनन्त है और इसके कहने और सुनने-

''कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।''

(रा०च०मा० १।१४०।५)

अत: ग्यारहवें क्रममें सभी सन्तोंको वक्ता एवं श्रोता दोनों श्रेणीमें रखा गया है। ये सन्त सर्वत्र नित्य-निरन्तर रामकथा कहते और सुनते रहते हैं। अन्तमें रामकथाके सर्वश्रेष्ठ श्रोता श्रीहनुमान्‌जी महाराजका उल्लेखकर लेखनीको विराम देता हूँ, जो रामकथाके श्रवण करनेके लिये ही पृथ्वीपर निवास कर रहे हैं।

उपर्युक्त लेख ''रामकथाके वक्ता एवं श्रोता'' का सारांश एक तालिकाके रूपमें इसीके साथ संलग्न है—

रामकथाके वक्ता एवं श्रोता [संक्षिप्त तालिका]

क्र०	वक्ता	श्रोता	स्थान	अन्य विवरण	प्रमाण/ साक्ष्य
१.	अगस्त्य ऋषि	भगवान् शिव एवं सतीजी	दण्डकारण्य	त्रेतायुगमें भगवान् शिव रामचरितका विधिवत् श्रवण करनेके लिये सतीजीको साथ लेकर अगस्त्यऋषिके पास गये थे।	बालकाण्ड दोहा सं० ४८।१-२
२.	भगवान् शिव	लोमश ऋषि		महर्षि लोमश काकभुशुण्डिजीसे बता रहे हैं। ''इस गुप्त एवं सुन्दर रामचरितरूपी सरको मैंने भगवान् शम्भुकी कृपासे प्राप्त किया था।''	उत्तरकाण्ड ११३।११
३.	लोमश ऋषि	काकभुशुण्डिजी	मेरुगिरि	काकभुशुण्डिजी द्विज शरीरमें लोमश ऋषिके आश्रममें गये हुए थे। वहींपर दोनोंके बीच सगुण और निर्गुण उपासना-प्रक्रियामें मतभेद होनेके कारण लोमश ऋषिने उन्हें वायस होनेका शाप दे दिया। पश्चात् उन्हीं काकभुशुण्डिको लोमश ऋषिने रामकथा सुनायी।	उत्तरकाण्ड ११३।६—९
४.	काकभुशुण्डि	भगवान् शिव	नीलगिरि	सतीजीके शरीर त्यागनेके बाद उनके वियोगमें भगवान् शंकर कैलास छोड़कर विरक्तभावसे भ्रमण करते हुए नीलगिरि जा पहुँचे। जहाँ काकभुशुण्डि रामकथा कहा करते थे; वहींपर शंकरजीने हंसरूप धारण करके काकभुशुण्डिजीसे रामकथाका आस्थापूर्वक श्रवण किया।	उत्तरकाण्ड दो० ५७
५.	काकभुशुण्डि	गरुड़जी	नीलगिरि	भगवान् शिव स्वयं उमाजीसे बता रहे हैं कि भुशुण्डिजीने रामकथा कही और गरुड़जीने सुनी।	बालकाण्ड दो०१२०(ख)
६.	भगवान् शिव	उमा (पार्वतीजी)	कैलासपर्वत	भगवान् शिवने उमाजीको वही रामकथा सुनायी, जो उनसे ठीक पहले काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीको सुनायी थी।	उत्तरकाण्ड ५२।६, बालकाण्ड सोरठा १२०(ख), उत्तरकाण्ड दो० ५५
७.	भगवान् शिव	काकभुशुण्डिजी		काकभुशुण्डिको अधिकारी समझकर शिवजीने सुनायी।	बालकाण्ड ३०।४
८.	काकभुशुण्डि	याज्ञवल्क्य		'तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।'	बालकाण्ड ३०।५
९.	याज्ञवल्क्य	भरद्वाज	तीर्थराज-प्रयाग	भरद्वाजके विशेष आग्रहपर याज्ञवल्क्यने उन्हें सुनाया।	बालकाण्ड ३०।५
१०.	स्वामी नरहरिदास	गोस्वामी तुलसीदास	शूकरक्षेत्र	कलियुग, सं०१५६४ वि०	बालकाण्ड दो० ३०(क) ३०(ख), ३१।१
११.	सभी सन्त	सभी सन्त	सर्वत्र	'कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥'	बालकाण्ड १४०।५

भगवान् कहाँ हैं ? मानव-जीवनमें सुख-दुःख

(श्रीसीतारामजी)

भगवत्प्राप्तिके लिये भगवान्‌को न कहीं पृथ्वीपर, न कहीं आकाशमें और न ही कहीं पातालमें ढूँढ़नेकी आवश्यकता है, भगवान् प्रत्येक प्राणीके अन्तःस्थलमें आत्मा (जीव)-के रूपमें विद्यमान होते हैं। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आत्माके बारेमें श्रीमद्भगवद्गीतामें निम्न प्रकारसे बताया है—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

(१०।२०)

हे अर्जुन! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। तथा—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

(१५।७)

अर्थात् इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षित करता है।

आत्मा (जीव)-के बारेमें महान् सन्तोंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—

ज्यों तिल माहीं तेल है चकमक में ज्यों आग।
तेरा साईं तुझमें जाग सके तो जाग॥

जैसे तिलके बीजमें तेल छिपा होता है और चकमक पत्थरमें आग, उसी प्रकार साईं (आत्मा-जीव) प्रत्येक प्राणीमें रहता है, जो सभीको दिखायी नहीं देता। तथा—

कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढ़े बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं॥

कस्तूरी मृगकी नाभिमें स्थित होता है, जो उसे दिखायी नहीं देता। कस्तूरी पानेके लिये मृग वनमें इधर-उधर भटकता-फिरता रहता है। इसी प्रकार राम (आत्मा) प्रत्येक प्राणीके अन्दर होता है, लेकिन लोगोंको इसकी जानकारी नहीं होती है।

महापुरुषों एवं विद्वज्जनोंने भी बताया है।

आत्मा (जीव) अमर-अजर होता है। आत्माकी कभी मृत्यु नहीं होती है, कर्मभोगके लिये आत्मा शरीर बदलती रहती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें इसका वर्णन निम्न प्रकारसे है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(गीता २।२०)

अर्थात् यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २।२२)

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर, दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरको त्यागकर, दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।

जीवात्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें किस प्रकार रूपान्तरित होती है, इसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता (२।१३)-में निम्नानुसार किया गया है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

अर्थात् वायु गन्धके स्थानसे गन्धको जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीरका त्याग करता है, उससे इन मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है।

शरीरको छोड़कर जाते हुएको अथवा शरीरमें स्थित हुएको अथवा विषयोंको भोगते हुएको—इस प्रकार तीनों गुणोंसे युक्त हुए आत्मा (जीव)-को अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले विवेकशील ज्ञानी ही तत्त्वसे जानते हैं।

चूँकि आत्मा अमर-अजर है, इसकी कभी मृत्यु नहीं होती है। मनुष्य अपने जीवन-कालमें पूर्व-कर्म एवं वर्तमान कर्मके कर्मानुसार सुख-दुःख पाता है। आत्माके साथ कैमरा एवं टेपरिकार्डर होता है, जिनमें मनुष्यके प्रत्येक अच्छे-बुरे कर्मका लेखा-जोखा दर्ज होता रहता है। मनुष्यद्वारा जाने-अनजानेमें किये गये प्रत्येक अच्छे-बुरे कर्म समय आनेपर, उसके सामने सुख-दुःखरूपमें प्रकट हो जाते हैं। शास्त्रोंमें इसका उल्लेख निम्नवत् है—

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ३१।६९-७०)

अर्थात् कोई भी कर्म सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे नष्ट नहीं होता। अपने किये हुए शुभ-अशुभ कर्मोंका फल [मनुष्यको] अवश्य भोगना पड़ता है।

यदाचरति कल्याणं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदेव लभते भद्रं कर्ता कर्मजमात्मनः॥

मनुष्य जैसा भी अच्छा या बुरा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्ताको अपने कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

वर्तमान जीवनमें कोई मनुष्य सुख-वैभव प्राप्त करता है तो कोई दीन-हीन, दुःख-दारिद्र्यभरा जीवन जीता है। यह सब जन्म-जन्मान्तरके कर्मोंके प्रतिफल होते हैं, जो उसके सामने सुख-दुःखके रूपमें प्रकट होते हैं। अतएव, धीर एवं समझदार मनुष्यको वर्तमान जीवनमें सुख-वैभव मिलनेपर इतराना नहीं चाहिये और दुःख मिलनेपर घबराना नहीं चाहिये, बल्कि दुःखका धैर्यपूर्वक सामना करते हुए, दुष्कर्मोंसे दूर रहते हुए सत्कर्म करते हुए, जीनेका प्रयास करना चाहिये। निर्धन व्यक्तिको जल्दी-जल्दी धनवान् बननेके चक्करमें पड़कर, निषिद्ध एवं शास्त्र-विरुद्ध कर्मोंमें संलिप्त होकर, अपना लोक-परलोक नहीं बिगाड़ना चाहिये।

प्रेरक-प्रसंग—

सबमें राम

श्रीरामकृष्ण परमहंस उपदेशामृत बरसा रहे थे। सहसा एक व्यक्तिने नितान्त बालकोचित भावसे कहा, महाराज! मैं तो पापोंकी खान हूँ। भला मुझमें ईश्वरका निवास कैसे हो सकता है?

परमहंस महाराजने उस व्यक्तिकी थोड़ी-सी भर्त्सना की और बोले, अपने भीतर पाप-ही-पाप क्यों देखते हो? यह क्यों नहीं विश्वास करते कि जिसने एक बार भी सच्चे हृदयसे ईश्वरका ध्यान किया और स्वयंको भगवान्‌के प्रति अर्पित कर दिया, वह तर गया। ऐसे पापियोंकी कहानियाँ क्या तुमने नहीं सुनी हैं, जिन्होंने एक बार प्रेमसे भगवान्‌को पुकारा और प्रभु नंगे पाँव दौड़कर उनकी रक्षाको आ गये। भगवान्‌के दरबारसे पापमुक्तिका आश्वासन शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

श्रोता दुराग्रही था, बोला, लेकिन भगवान्‌के सामने स्वयंको अर्पित कैसे किया जाय, उन्हें एकबारगी प्रेमसे कैसे पुकारा जाय?

परमहंसके स्वरमें दुलारभरा क्रोध आया। बोले, रे मूर्ख! क्या यह भी मुझे बताना होगा, बच्चेको कौन शिक्षा देता है कि तू रो! क्या तुझमें अबोध शिशु जितनी चेतना भी नहीं है कि तू अपने प्रभुको प्रेमसे पुकार सके। प्रस्तुति—श्रीअर्जुनलालजी बंसल

गीतामें राजधर्मके सूत्र

(श्रीहरिरामजी सावला)

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

महाभारत, जो अपने-आपमें संसारका पूर्ण ग्रन्थ माना जाता है, तथा जिसके लिये '**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्**' (महा०, आदिपर्व) उक्ति प्रसिद्ध है। उससे निर्गत गीतामृत भगवान् श्रीकृष्णका योगयुक्त उद्बोधन है। इसमें केवल वेदान्त ही नहीं, वरन् व्यावहारिक पक्ष भी है।

कुरुक्षेत्रमें सन्नद्ध उभयपक्षीय सेनाओंके मध्य अर्जुनको इसका उपदेश उस मध्य (वार्ता)-का स्मरण कराता है, जहाँ सुयोधनने '**सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव**' कहकर युद्धको अवश्यम्भावी बना दिया। कुरुसभाका वह मध्य भी समस्त हिन्दू जाति और तत्कालीन धर्म-व्यवस्थाओंके लिये कलंक बन गया, जिसमें एक कुलवधूको अपमानितकर स्वजनों, गुरुजनों और परिजनोंके मध्य निर्वस्त्र करनेका प्रयत्न किया गया। वह अबला स्त्री बिलखने लगी।

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति।
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥

(महा० उद्योगपर्व ५९। २२)

द्रुपदपुत्री कृष्णाका यह चीत्कार कृष्णके लिये ऋण-भार होकर हृदयको कचोटने लगा। अन्तमें यह घटना कुलके विनाशका कारण बनी।

'**यतो धर्मस्ततः कृष्णः**' श्रीकृष्ण धर्मके पक्षपाती तथा अधर्म, अन्याय, दम्भ और पाखण्डके विरोधी थे। '**यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः**' उनका मूलमन्त्र था। तथापि वह किसी भी स्थितिमें स्वयं धर्मका त्याग नहीं करते थे।

नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद् वा धर्मं जह्यां कथञ्चन॥

(महा०, उद्योग० ९१। २४)

युद्धको टालनेका श्रीकृष्णने पूर्ण प्रयास किया, '**यो मोचयेन्मृत्युपाशात् प्राप्नुयाद् धर्ममुत्तमम्**' कौरव-सभामें जाकर दुर्योधनके विपरीत आचरण और पाण्डवोंकी न्यायोचित माँगका समर्थन करते हुए शान्तिपूर्वक समझौतेक भी आह्वान किया। कौरवराजपर राजधर्मके चार सूत्र साम, दाम, भेद और दण्डमें जो प्रयोग किया, वह सब धर्मराज युधिष्ठिरको बताया।

साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन् सौभ्रात्रमिच्छता।
अभेदायास्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये॥
पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते।
कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम्॥
पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाब्रुवम्।
अभेदात् कुरुवंशस्य कार्ययोगात् तथैव च॥
सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्च ग्रामान् विसर्जय।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम॥
एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चते।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा॥

(महा०, उद्योग० १५०। ८-९, १४, १७-१८)

अन्तमें दुष्टात्मा दुर्योधनके दुराग्रहके कारण अब एकमात्र उपाय युद्ध ही है, दुर्योधन भी युद्धके लिये तत्पर है। दण्डका प्रयोग ही उचित है। पापात्मा दुर्योधन युद्धमें '**बलं भीष्माभिरक्षितम्**' सोचकर विजयकी आशामें निष्कण्टक राज्य-प्राप्तिके लोभसे ग्रसित है। इसलिये युद्धका दुराग्रह कर रहा है। जबकि शुद्धात्मा अर्जुन युद्धमें कुलक्षयसे भयभीत हैं।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः॥
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

(गीता १। ४०—४२)

वर्णसंकरकी उत्पत्ति भी पितरोंके पतन और नरकक

भगवान् कृष्णने इस विषम स्थलपर अर्जुनका यह आचरण '**क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप**' हृदयकी दुर्बलता त्यागकर युद्धके लिये खड़ा होनेका आदेश दिया। लेकिन अर्जुन '**न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह**' कहकर फिर चुप हो गया।

एतावता अर्जुनकी कार्पण्य स्थिति देखकर '***साम दाम अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥***' (मानस) अतः श्रीकृष्णने सामका प्रयोग उचित समझा '**तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत**' अर्जुनसे हँसते हुए कहने लगे। अर्जुन! तू शोक न करनेयोग्य बातोंके लिये शोक मत कर; तू पण्डित है। हम सब लोग पहले भी थे, आज भी हैं और आगे भी रहेंगे। केवल देहका स्वरूप परिवर्तनमात्र होता है। धीर पुरुष इसमें मोहित नहीं होते। यह चेतन आत्मतत्त्व नाशरहित है और शरीर सब नाशवान् है। इसलिये तू युद्ध कर। मनुष्य अपने पुराने वस्त्रोंको त्यागकर जैसे नये वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरको त्यागकर नये शरीरको प्राप्त करता है। स्वधर्मको जानकर भी तू युद्धसे काँप रहा है। क्षत्रियके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। यदि तू युद्धमें मारा गया तो स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा संग्राममें जीतकर पृथ्वीका राज भोगेगा। इसलिये अर्जुन! युद्धका निश्चयकर खड़ा हो। तेरा तो कर्म करनेका अधिकार है। फलमें आसक्ति मत रख। विषयोंमें आसक्तिसे काम उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध, क्रोधसे मोह और मोहसे स्मृति भ्रमित हो जाती है तथा स्मृति-भ्रमसे बुद्धिका नाश और अन्तमें प्राणी सर्वनाशको प्राप्त होता है। जो धीर पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर, स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुनने फिर कारण पूछा—इस घोर कर्ममें लगानेका।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥

(गीता ३। १)

हुए कर्मकी आवश्यकतापर बल दिया और उसक रहस्य समझाया।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

(गीता ३। २२—२४)

अर्जुन! मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है और न किसी अप्राप्त वस्तुको प्राप्त ही करन है। तथापि मैं कर्म करता हूँ। कदाचित् मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य मेरा ही अनुसरण करेंगे और अपन कर्तव्य कर्म छोड़ देंगे। जिससे बिना कर्मके सब भ्रष्ट हो जायँगे और मैं वर्ण-संकरताका कर्ता माना जाऊँग तथा सारी प्रजाके नष्ट होनेका दायित्व मेरे ऊपर होगा इसलिये हे भारत! कर्ममें आसक्त अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान्को भी लोक-संग्रहके लिये उसी प्रकार कर्म करना चाहिये। यद्यपि सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं। तथापि अहंकारयुक्त अज्ञानी पुरुष ऐसा मानता है कि मैं कर्ता हूँ। सभी प्राणी प्रकृति (स्वभाव)-के अनुरूप चलते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्ट करते हैं। फिर इसमें कोई क्या निग्रह करेगा। अपने धर्ममें मरना भी श्रेष्ठ है, परंतु पराया धर्म भयकारक है अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुतसे जन्म हो चुके हैं। तू उनको नहीं जानता, पर मैं जानता हूँ। धर्मका ह्रास होनेपर मैं अवतीर्ण होता हूँ। मेरे जन्म और कर्म सब अलौकिक हैं। इस प्रकार जो तत्त्वसे मुझे जानता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है।

इस संसारमें सारी सिद्धियाँ कर्मसे ही उत्पन्न होती हैं विशेष ज्ञान स्वका समर्पण और सेवा-भावद्वारा ही तत्त्वदर्शियोंसे प्राप्त किया जा सकता है। जो पुरुष सब कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण करके आसक्तिको त्यागकर अपन

लिप्त नहीं होता। अर्जुनने भगवान्‌से फिर प्रश्न किया '**किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम**' (गीता ८। १)

पुरुषोत्तम! ब्रह्म क्या वस्तु है, इसपर श्रीकृष्णने तीसरा सूत्र दानको अपनाया।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

अर्जुन! तू इन पचड़ोंको छोड़कर मुझे ही अपना सब कुछ अर्पण कर दे, इससे तू जो करेगा। वह सब मुझे ही प्राप्त होगा तथा शुभाशुभ फल एवं कर्म-बन्धनसे तू मुक्त रहेगा। तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन। अर्जुनको भगवान्‌के इस कथनपर सम्भवतया विश्वास नहीं हुआ और उसने भगवान्‌की व्यापकताको प्रत्यक्ष रूपसे देखनेका आग्रह किया।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥

(गीता १०। १७)

योगेश्वर! मैं किस प्रकार निरन्तर आपका चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और किन भावोंमें आप चिन्तनीय हैं। अर्जुनको समझाते हुए भगवान् बोले—'मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबकी आत्मा हूँ और मैं ही सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी हूँ अथवा इस बहुत जाननेसे तुझे क्या प्रयोजन! मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिसे एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।' इसपर अर्जुनने कहा—

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥

(गीता ११। ४)

हे प्रभो! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है—ऐसा आप मानते हैं तो हे योगेश्वर! उस अविनाशी स्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि॥

हे अर्जुन! अब इस मेरे शरीरमें एक जगह स्थित देखना चाहता हो सो देख। भगवान्‌ने अर्जुनसे ऐसे कहकर अपना विराट् रूप प्रकट किया। परमदेव परमेश्वरको अर्जुनने देखा कि आकाशमें हजार सूर्योंके एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके सदृश कदाचित् हो

अर्जुन बोले—हे देव! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको तथा अनेक भूतोंके समुदायोंको, कमलके आसनपर विराजित ब्रह्माको, महादेव और सम्पूर्ण ऋषियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूँ।

'**दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्**' अर्जुनने सचराचर सबको व्यथित होते देखा तथा वह स्वयं भी उद्विग्न होने लगा और भगवान्‌से बोला कि '**विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं**' मुझे बतलाइये कि आप उग्र रूपवाले कौन हैं? हे देवोंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। भगवान्‌ने अवसर पाकर चौथा सूत्र दण्ड प्रयोगकी चेतावनी दी।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः॥
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥

(गीता ११। ३२)

मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ काल हूँ और इस समय इन लोकोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हूँ। युद्धाभिलाषी प्रतिपक्षी सेनाओंके योद्धा तेरे बिना ही मारे जायँगे।

'तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।'

इसलिये तू उठ और यश प्राप्तकर शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग।

अर्जुन इसपर '**सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य**' अत्यन्त डरते हुए भगवान्‌से गिड़गिड़ाकर बोले—

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

(गीता ११। ४४)

सखा सखाको और पति प्रियतमा पत्नीके अपराधको क्षमा कर देता है, वैसे ही आप हमारे अपराध क्षमा करें।

'इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः' मैं सचेत हो गया हूँ और अपनी पूर्व प्रकृति (स्वाभाविक स्थिति)-को प्राप्त हो गया हूँ। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने राजनीतिके चारों अंगों—साम, दाम, भेद और दण्डको अपनाकर अर्जुनको कर्मक्षेत्रमें प्रविष्ट करानेमें सफलता प्राप्त की। गीतामें केवल ज्ञान, कर्म और उपासना ही नहीं है, वरन् व्यवहार और राजनीति भी है। हमारे देशके महान् देशभक्त राष्ट्रनायक लोकमान्य तिलक, जिन्होंने 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का उद्घोष किया, गीतापर कर्मयोगशास्त्र अर्थात् 'गीतारहस्य' नामक ग्रन्थ लिखा, उससे देशकी प्रबुद्ध जनता प्रभावित हुई। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, जिन्होंने अंग्रेजोंसे देशको स्वतन्त्र कराया। गीताको अपनी माता कहते थे और कहा करते थे कि किसी भी कठिनाईके समयमें गीतामाताके पास चला जाता हूँ। मेरी सारी कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। एतदर्थ गीता ***'गागरमें सागर'*** है। इसमें कबीर साहबकी भी उक्ति ठीक बैठती है। ***'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।'***

प्रेरक-प्रसंग—

डॉक्टर नहीं, पण्डित

पण्डित मदनमोहन मालवीयजी सफलकाम हो चुके थे। हिन्दू-विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था और वे स्वयं उसका सुसंचालन कर रहे थे।

कलकत्ता यूनिवर्सिटीके वाइस-चांसलरका एक दिन एक पत्र पण्डित मालवीयजीको मिला, जिसमें लिखा था—'कलकत्ता यूनिवर्सिटी आपको डॉक्टरेटकी सम्मानित उपाधिसे अलंकृत करके गौरवान्वित होना चाहती है। आशा है, आप अपनी स्वीकृतिसे मुझे शीघ्र सूचित करेंगे।' एक क्षणका भी विलम्ब न कर मालवीयजीने स्वयं अपने हाथसे लिखकर उस पत्रका उत्तर दिया—''मैं जन्म और कर्मसे ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मणके लिये 'पण्डित'से बढ़कर अन्य कोई उपाधि नहीं हो सकती। 'डॉक्टर मदनमोहन' कहलानेकी अपेक्षा मैं 'पण्डित मदनमोहन' कहलाना अधिक पसन्द करूँगा। आशा है, आप इस ब्राह्मणकी इस भावनाका आदर करेंगे।''

वृद्ध मालवीयजी वाइसरायकी कौंसिलके वरिष्ठ काउंसिलर भी थे। उनकी गहन और तथ्यपूर्ण आलोचनाओंके बावजूद वाइसराय उनकी मेधा, मधुरता, सज्जनताके बहुत कायल थे। एक विशेष मुलाकातमें वाइसरायने कहा—''पण्डित मालवीय! हिज मैजिस्टीकी सरकार आपको 'सर' की उपाधिसे अलंकृत करना पसन्द करेगी। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?'' मालवीयजीने तुरंत उत्तर दिया—''महामहिम! धन्यवाद, किंतु ब्राह्मणके लिये 'पण्डित' की उपाधि ही सर्वोपरि उपाधि है, जो मुझे वंशपरम्परासे ही प्राप्त है।''

काशीके पण्डितोंकी सभाद्वारा 'पण्डितराज'की उपाधि दिये जानेके सुझावपर उस देवताने कहा था—''पण्डितकी उपाधि विशेषणातीत है। मुझे 'पण्डित' ही रहने दीजिये।''

जब भी किसी ब्राह्मण विद्वान्के नामके पूर्व 'डॉक्टर' शब्दका प्रयोग होता है, मुझे पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी याद आ जाती है। डॉ० भगवानदाससे एक बार उन्होंने कहा था—''ब्राह्मणेतर किसी भी विद्वान्के नामके पूर्व 'डॉक्टर' शब्दका प्रयोग शोभनीय है, परंतु एक ब्राह्मण विद्वान्के नामसे पूर्व 'डॉक्टर' शब्दके प्रयोगमें मुझे बहुत हल्कापन-सा प्रतीत होता है।''

वे देवता अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक विशुद्ध ब्राह्मण और शुद्ध पण्डित ही बने रहे। कभी स्वप्नमें भी उन्होंने किसी अन्य उपाधि अथवा विशेषणकी कामना नहीं की।—विद्यानन्द 'विदेह'

'भोग' और 'प्रसाद'

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

हमारी पूजा-उपासनामें नित्यशः व्यवहृत होनेवाले 'भोग' और 'प्रसाद' शब्दोंमें साधनाका एक गम्भीर रहस्य अन्तर्निहित है। उपास्य-देवको भक्तिपूर्वक निवेदित किये गये भक्ष्य, भोज्य और पेय आदि पदार्थोंको नैवेद्य कहा जाता है। इस 'नैवेद्य'को ही 'भोग' या 'प्रसाद' भी कहा जाता है। आपाततः ये दोनों शब्द परस्पर पर्यायसे प्रतीत होते हैं, किंतु इनके अर्थोंमें एक तात्त्विक क्रम है। जो पदार्थ हमें अपने प्राक्तन-कर्मों (प्रारब्ध)-से प्राप्त होते हैं, वे चाहे सुखरूप प्रतीत हों या दुःखरूप, शास्त्रीय दृष्टिसे 'भोग' कहे जाते हैं। सुखरूप माने जानेवाले भोगोंकी सुखरूपता भी एक भ्रममात्र है, वस्तुतः तो ये सभी 'दुःखयोनि' अर्थात् दुःखप्रद ही हैं। जो विषय हमें प्रिय लगते हैं, उनकी अप्राप्ति तथा विनाशमें दुःख होता है और जो बुरे समझे जाते हैं, उनका संयोग दुःखद होता है, इसलिये गीताकारने कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

अतएव यदि इन्हें अपना मानकर सेवन करेंगे तो कष्ट ही होगा, किन्तु शरीर-यात्रा तथा व्यवहारकी उपपत्तिके लिये स्वरूपतः इनका त्याग करना भी नितान्त असम्भव है, ऐसी दशामें इनका शोधन करनेहेतु इन्हें भगवद्भोग्य बना देना ही समीचीन-मार्ग है। हमारे भोग चाहे सुखवत् प्रतीत हों या दुःखवत्, कभी हमें सच्ची प्रसन्नता नहीं दे पाते। इसका कारण है कि हमें उनके हानोपादानकी चिन्ता स्वयं करनी पड़ती है। इस प्रकार हमारे तथाकथित 'सुख' में भी दुःखका सूक्ष्म किन्तु व्यापक अनुवेध हमें स्वाभाविक प्रसन्नतासे वंचित रखता है। जिस क्षण ये भगवदर्पित हो जाते हैं, उस समय भोग न रहकर 'प्रसाद' बन जाते हैं। प्रसादका तात्पर्य ही है प्रसन्नता—'**प्रसादस्तु प्रसन्नता**'।

इनका भौतिकस्वरूप तो वही रहता है किंतु अब ये 'विषय-विष' न रहकर 'परमस्वास्थ्यकर औषध' बन जाते हैं। भगवान् शंकराचार्यने भगवद्गीताकी टीकामें 'प्रसाद' या प्रसन्नताका अर्थ यही 'स्वास्थ्य' (अपने स्वरूपमें स्थित होना) स्वीकार किया है—

प्रसादः प्रसन्नता—स्वास्थ्यम्।

(गीता शाङ्करभाष्य २।६४)

इसकी और अधिक व्याख्या करते हुए श्रीमधुसूदनसरस्वतीने इसे परमात्माके साक्षात्कारकी योग्यता कहा है—'**प्रसादं प्रसन्नतां चित्तस्य स्वच्छतां परमात्मसाक्षात्कारयोग्यतामधिगच्छति।**' (गीता-मधुसूदनी टीका २।६४)

अर्थात् प्रसाद, प्रभुकी ओरसे भक्तको एक ऐसा आश्वासन है, जहाँ समस्त दुःख स्वयमेव तिरोहित हो जाते हैं—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते

(गीता २।६५)

यह आश्वासन परम मधुर और सर्वात्मना शिरोधार्य होता है। इसीलिये प्रतीकभूता वस्तुको प्रसादके रूपमें सादर सिरसे लगाते हैं। मधुर तो हमें भोग भी लगते हैं, किन्तु उनका यह माधुर्य प्रातिभासिक अथ च अनित्य होता है। ये ही जब भगवदर्पित होकर 'प्रसाद' बनते हैं, तब उनमें वास्तविक माधुर्यकी अभिव्यक्ति होती है—ऐसा माधुर्य, जिसके एक सीकरके लिये स्वर्गका शासक भी हाथ फैला देता है।

अतएव इन शब्दोंका यही क्रम है, पहले 'भोग' और फिर 'प्रसाद'। आशय यह है कि यदि हम अपने भोगोंको भगवद्भोग्य बना देंगे, तो फिर वे 'भोग' न रहकर सहज प्रसन्नता और आनन्दके संवाहक 'प्रसाद' बन जायँगे।

श्यामसुन्दर स्वयं हमारे भोगोंकी तिक्तता स्वीकार करके हमें माधुर्य वितरित करते हैं और इसीलिये अपने प्रिय भक्तोंके लिये उनका यह उद्घोष भी है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९।२७)

कैसे प्राप्त हो सद्‌बुद्धि ?

(श्रीबरजोर सिंहजी)

हमारे शास्त्र कहते हैं—

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखशोको भयङ्करः॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम्।
भारते सततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः॥

पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकारकी दीनताओंका बीज है। पापसे भयंकर शोककी उत्पत्ति होती है। यह महान् वैर उत्पन्न करनेवाला, दोषोंका बीज और अमंगलकारी है। भारतके सन्तपुरुष इसी कारण कभी पापका आचरण नहीं करते।

बुद्धि तो सहज रूपमें सभी मनुष्योंको प्राप्त होती है—किसीको कम, किसीको ज्यादा। बुद्धि प्राप्त होनेसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, सद्‌बुद्धिका प्राप्त होना। इसी सद्‌बुद्धिके प्राप्त होनेपर ही हम पापका आचरण नहीं करते। बुद्धि यदि भ्रष्ट होकर कुमार्गगामी बन जाय तो वह व्यक्तिका स्वयंका पतन तो करती ही है, उसके क्रिया-कलाप समाजको भी क्षति पहुँचाते हैं। यदि मनुष्य सद्‌बुद्धिसम्पन्न हो तो वह अपना कल्याण करनेके साथ-साथ समाजका भी कल्याण करता है। भगवान् श्रीकृष्णने इस सद्‌बुद्धिको ही बुद्धिमानोंकी विभूति और अपना स्वरूप बताया है। गीतामें कहा भी गया है—'**बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि**' (७।१०)। अर्थात् बुद्धिमानोंकी बुद्धि मैं ही हूँ।

जिन ऐश्वर्य-साधनोंको प्राप्त करनेके लिये लोग लालायित रहते हैं, वे प्रबल पुरुषार्थके बलपर ही पाये जाते हैं। यह तथ्य सद्‌बुद्धिके प्राप्त होनेपर ही समझमें आता है और तब यह आस्था सुदृढ़ बनती है कि देवता किसीको छप्पर फाड़कर धनकी वर्षा नहीं करते। वे केवल ऐसी सत्प्रेरणा उल्लसित करते हैं, जिससे चिन्तन और कर्तव्य दोनों ही क्षेत्र सद्‌ज्ञान तथा सत्कर्मसे ओत-प्रोत होते चलते हैं।

ग्वाला जिस प्रकार लाठी लेकर पशुओंकी रक्षा जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसकी बुद्धिको सन्मार्गपर नियोजित कर देते हैं।

सद्‌बुद्धिकी प्रेरणासे जब साधक आत्मशोधन करता है, तो उसके भीतरके कषाय कल्मषोंका निराकरण होने लगता है और तब उसके भीतर निहित आत्मचेतनाकी क्षमताएँ सहज ही प्रकट होने तथा प्रखर बनने लगती हैं और यही वह स्थिति है, जिससे कई प्रकारकी दिव्य विशेषताओंका आभास मिलता है। भारतीय संस्कृति कर्मवादकी संस्कृति है। उसमें पुरुषार्थ, प्रयत्न, संघर्ष और श्रम करके अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त करनेका आदेश है। ईश्वरसे जो प्रार्थनाएँ की गयी हैं, उनमें ईश्वरका आशीर्वाद, पथ-प्रदर्शन, नेतृत्व माँगा गया है। जब बालक परीक्षा देने जाते हैं, तब गुरुजनोंसे उत्तीर्ण होनेका आशीर्वाद माँगते हैं। आशीर्वादको पाकर छात्रका उत्साह तो बढ़ता है, पर वह अपने प्रयत्नसे परीक्षामें उत्तीर्ण होता है। गायत्री-मन्त्रमें 'हम' शब्दका उपयोग हुआ है—सद्‌बुद्धिकी याचना सीमित 'मैं' के लिये नहीं, विस्तृत 'हम' के लिये की गयी है; क्योंकि सबकी सद्‌बुद्धिपर ही अपना कल्याण निर्भर है। व्यक्तिका संकीर्ण स्वार्थ वास्तवमें सच्चा स्वार्थ नहीं है। जिसमें सबका स्वार्थ है, असलमें वही अपना स्वार्थ है। इसी तथ्यको ध्यानमें रखकर भगवान् बुद्धने कहा था—'जबतक एक भी प्राणी बन्धनमें है, तबतक मैं मुक्ति नहीं चाहता। व्यक्तिगत सुख उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि सबको सुखी होते देखनेका सुख। यही कारण है कि अनेक सिद्ध महापुरुष स्वर्गका सुख भोगनेकी अपेक्षा संसारके दुखी लोगोंकी सेवा करनेके लिये संसारमें ही रहना पसन्द करते हैं।

आत्माको सबसे अधिक आवश्यकता जिस वस्तुकी है, वह है सद्‌बुद्धि। सद्‌बुद्धिके अभावमें जिस कुबुद्धिसे उसका पाला पड़ता है, वह उसे पग-पगपर कुचलती है और वह नारकीय स्थिति उत्पन्न करती है, जिससे

जानेसे इन्द्रियाँ मौज तो कर लेती हैं, पर यह आत्माके लिये बोझ ही सिद्ध होता है। आत्मा छटपटाती-कराहती और परमात्माके सामने गुहार लगाती हुई कहती है—हे प्रभु! सद्बुद्धि दीजिये, जिससे दिव्य जीवनका आनन्द प्राप्त हो। सद्बुद्धिका प्राप्त होना इतना बड़ा लाभ है, जिसकी तुलनामें कोई भी सिद्धि, कोई भी सम्पदा नहीं ठहर सकती।

पर अब प्रश्न इस बातका है कि सद्बुद्धि कैसे प्राप्त की जाय? इसके जवाबमें हम इतना कह सकते हैं कि सद्बुद्धि अपने ही प्रयत्नसे आती है।

सद्बुद्धि प्राप्त करनेके लिये संयम, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, सत्कर्मोंका आश्रय तथा ईश्वरसे प्रार्थनाकी आवश्यकता होती है। प्रार्थनामें ऐसी शक्ति होती है, जिससे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। प्रार्थना सच्चे मनसे, रोज नियमित समयपर होनी चाहिये। संसारमें जितने भी महान् पुरुष हुए हैं, सभीने प्रार्थना करके ही सब कुछ हासिल किया है। प्रार्थनामें गाया जाता है—*'हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये'* अर्थात् परमात्मा हमारी बुद्धिको सन्मार्गमें प्रेरित करें।

प्रेरक-प्रसंग—

कर्तव्य-पालन

बात पुरानी है। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका गये हुए थे और वहाँ फैले हुए रंगभेदके विरुद्ध सत्याग्रह चला रहे थे। तबतक वे महात्माके रूपमें प्रसिद्ध नहीं हुए थे। उसी बीच एक आवश्यक कार्यसे उनका भारत आना हुआ। एक दिन वे रेलगाड़ीसे यात्रा कर रहे थे। वे तृतीय श्रेणीमें बैठे थे। और भी यात्री डिब्बेमें थे। संयोगकी बात, उसमें बैठे हुए एक व्यक्तिको थूकनेकी इच्छा हुई और उसने डिब्बेके बाहर न थूककर डिब्बेके फर्शपर ही थूक दिया। पासमें बैठे यात्रियोंने इसे देखा, लेकिन वे चुपचाप बैठे रहे; न कुछ कहा, न कुछ किया। गांधीजीको डिब्बेके फर्शपर पड़ा थूक सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपने पासके अखबारसे थोड़ा कागज लिया और फर्शपर पड़े थूकको पोंछकर कागज बाहर फेंक दिया। जिस व्यक्तिने थूका था, वह गांधीजीकी इस चेष्टासे चिढ़ गया। उसे चाहिये था कि वह गांधीजीकी इस चेष्टासे शिक्षा लेकर डिब्बेके बाहर थूकता, परंतु उसने अपने मनमें इस प्रकारकी भावना बना ली कि यह सफाईपसन्द व्यक्ति मुझे नीचा दिखानेके लिये फर्शपर पड़ा थूक पोंछकर बाहर फेंक रहा है। ऐसा सोचकर उसने फिर फर्शपर थूक दिया। गांधीजीने पुनः कागजका टुकड़ा लिया और थूक पोंछकर कागज डिब्बेसे बाहर फेंक दिया। अब तो वह व्यक्ति बार-बार थूकने लगा। किंतु गांधीजी भी सामान्य व्यक्ति तो थे नहीं कि उसकी इस चुनौतीसे विचलित होते। जैसे ही वह व्यक्ति थूकता, गांधीजी उसी प्रसन्नताके साथ उसे कागजसे पोंछकर फेंक देते। डिब्बेमें बैठे सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित थे।

थोड़ी देरमें स्टेशन आ गया। प्लेटफार्मपर बड़ी भीड़ जमा थी और 'गांधीजीकी जय' से सम्पूर्ण वातावरण गूँज रहा था। ज्यों ही गाड़ी रुकी, भीड़ उस डिब्बेकी ओर दौड़ पड़ी, जिसमें गांधीजी बैठे थे। गांधीजीने डिब्बेका फाटक खोला और दरवाजेपर खड़े होकर हाथ जोड़कर हँसते-हँसते भीड़का स्वागत किया। थूकनेवाला व्यक्ति यह सब देखकर भौंचक्का-सा हो गया। उसने देखा—फर्शपर थूकको पोंछनेवाला व्यक्ति कितना श्रद्धास्पद है, कितना सम्माननीय है। उसे अपनी भूल समझमें आयी और वह अपनी दुश्चेष्टाके लिये बहुत लज्जित हुआ। वह लपककर गांधीजीके चरणोंपर गिर पड़ा और बार-बार उनसे क्षमा-याचना करने लगा। गांधीजी जनताका स्वागत ग्रहण करनेमें लगे थे। अचानक अपने चरणोंपर किसी व्यक्तिको गिरा हुआ देखकर उन्होंने उस ओर दृष्टि घुमायी। गांधीजी समझ गये कि इस भाईको अपनी दुश्चेष्टाका दुःख है। उन्होंने हँसते हुए कहा—'भैया! क्षमाकी कोई बात नहीं है। मैंने तो अपना कर्तव्य-पालन ही किया है। ऐसा अवसर आनेपर तुम भी ऐसा ही करना।' थूकनेवाला भाई खड़ा हो गया। उसकी आँखें छलक आयीं।

मानव-देहकी सार्थकता

[हठयोगसाधनाके परिप्रेक्ष्यमें]

(डॉ० श्रीफूलचन्दप्रसादजी गुप्त)

हठयोगसाधनामें मानव-शरीरकी सार्थकता और महत्ता इस तथ्यसे समझमें आ जाती है कि इस साधनाका चरम फल शरीरस्थ शिवसे साधकका साक्षात्कार है। शरीरस्थ ब्रह्मरन्ध्रमें साधक परमशिवका दर्शनकर, जीवन-मरणके चक्रसे मुक्ति पाता है। मानव-देहको श्रेष्ठ माना गया है। मनुष्य एकमात्र विवेकशीलसम्पन्न प्राणी है। इसी शरीरमें वह जीवन्मुक्तिका मार्ग पाता है। शरीरको धर्म-साधन कहा गया है।

महायोगी गोरखनाथने कहा है कि मनुष्यका जन्म बार-बार नहीं मिलता है। अत: योगकी सिद्धिके लिये सिद्धपुरुषका सत्संग करना चाहिये। अहंकारको तोड़ देना चाहिये और सद्गुरुकी खोज करनी चाहिये—

आपा भांजिबा सतगुर षोजिबां जोगपंथ न करिबा हेला।
फिरि फिरि मनिषा जनम न पायबा करि लै सिध पुरसि सूं मेला॥

(गोरखबानी-सबदी २०३)

नाथपन्थके आदिगुरु भगवान् शिवने कहा है कि यह शरीर ब्रह्माण्ड कहा जाता है। जो कुछ इस शरीरमें है, वही ब्रह्माण्डमें व्यवस्थित है। इस शरीरमें सात द्वीप, मेरु पर्वत, सरिता, सागर, पहाड़, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि, मुनि, सभी नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, पीठ और पीठ देवता विद्यमान हैं। इसी शरीरमें चन्द्रमा रात-दिन नीचेकी ओर मुख करके अमृतकी वर्षा करता रहता है। मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन लाख प्रधान नाड़ियाँ हैं। नाड़ियोंमें सुषुम्ना नाड़ी मुख्य है। यह नाड़ी योगियोंकी हितकारिणी है। इसीलिये यह शरीर ब्रह्माण्डके नामसे प्रसिद्ध है। इस ब्रह्माण्डरूप शरीरमें बहुत-से स्थान हैं। उनमेंसे मैंने (शिवजी) प्रधान स्थानोंका वर्णन किया है। इन्हें शास्त्रोंका अध्ययन करके जानना चाहिये। इस शरीरमें अनेक नामवाले स्थान हैं। इनका वर्णन करना सम्भव नहीं है—

ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे स्थानानि स्युर्बहूनि च।
नानाप्रकारनामानि स्थानानि विविधानि च।
वर्तन्ते विग्रहे तानि कथितुं नैव शक्यते॥

(शिवसंहिता, द्वितीय-पटल ३७-३८)

भगवान् शिव कहते हैं कि जबतक कर्मसे प्राप्त शरीर आत्मज्ञान-स्वरूपबोधका साधन है, तबतक इसे धारण करना सफल है, अन्यथा इसके न रहनेपर—विनष्ट हो जानेपर निर्वाण—मोक्षकी प्राप्ति सम्भव नहीं है—

यदा कर्मार्जितं देहं निर्वाणे साधनं भवेत्।
तदा शरीरवहनं सफलं स्यान्न चान्यथा॥

(शिवसंहिता, द्वितीय-पटल ५२)

भगवान् शिवने मनुष्य-शरीरकी महत्ताका प्रतिपादन किया और स्पष्ट कर दिया है कि शरीर आत्मज्ञानका साधन है। इसमें ही स्वरूपबोध सम्भव है और स्वरूपबोधसे जीवको मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है, जो मानव-जीवनका चरम फल है।

महायोगी गोरखनाथने शरीरको मन्दिर कहा है, जिसमें मनरूपी योगी निवास करता है। वे कहते हैं—***'मनवां जोगी काया मढ़ी।'*** इसी शरीरमें परमात्माका वास है। अत: शरीर मन्दिर ही है। ***'प्यंड ब्रह्मंड निरंतर बास'*** कहकर शरीरको मन्दिरके समान बताया है। शरीरमें ही प्राणकी साधना सम्भव है। गोरखनाथजीने शरीरको तोपकी तरह बताया है, उसमें प्राणवायु बारूद है, अनाहतनाद ही अग्निका पलीता है, जिसके कारण धमाका सुनायी देता है। योगी इस शरीरमें अनाहतनादका श्रवण करते हुए अपने बिन्दुको ऊर्ध्वगामीकर गगन-ब्रह्मरन्ध्रमें प्रतिष्ठित कर लेता है और वह सहज ही शिवपदमें स्थित होकर परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है—

अवधू काया हमारी नालि बोलिये दारू बोलिये पवनं।
अगनि पलीता अनहद गरजै ब्यंद गोला उड़ि गगनं।

(गोरखबानी-सबदी ९५)

यह शरीर अन्नसे बने मांस और वायुसे बनी हड्डीसे निर्मित है। इसमें निवासकर वायु (प्राण)-की साधना करनी चाहिये। इससे प्राण शरीरमें रहता है और श्वास-प्रश्वासकी क्षीणतासे वह प्रभावित नहीं होता है। शरीरका प्राण-साधनासे नाश, पतन नहीं होता है, वह स्वस्थ रहता है तथा यम (मृत्यु)-का भय समाप्त हो जाता है—

अन्न का मास अनिल का हाड़ तत का बंद भषिबा बाई।
बदंत गोरषनाथ पूता होइ बाचि राई न पड़ै घट न जंम घर जाई॥

(गोरखबानी-सबदी ११७)

महायोगी गोरखनाथजीने शरीरको ही अनादि शिवका अधिष्ठान माना है। इस शरीरमें स्थित आत्मा सर्वश्रेष्ठ देवता है। इस तत्त्वको जानकर लोग अन्य देवताओंकी पूजा करते हैं। शरीरमें नव द्वार हैं, इसमें शिवस्वरूप नवनाथ अधिष्ठित हैं। इडा, पिंगलाके संगम-स्थान सुषुम्नामें साक्षात् जगन्नाथदेवका निवास है और दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्रमें परमशिव निवास करते हैं। यह दसवाँ द्वार ही केदारधाम है। भगवान् शिवका यहीं साक्षात्कार होता है। योगमार्ग समस्त साधनाओंका सारतत्त्व है। इसका आश्रय लेकर जीवात्मा भवसागरसे पार हो जाता है—

गुरदेव स्यंभ देव सरीर भीतरियें।
आत्मा उत्तिम देव ताही की न जांणौ सेव।
आंन देव पूजि पूजि इमही मरिये।
नवे द्वारे नवे नाथ, तृबेणीं जगन्नाथ,
दसवें द्वारि केदारं।
जोग, जुगतिसार तौ भौ तिरिये पारं।
कथंत गोरषनाथ विचारं॥

(गोरखबानी, पद ९)

भगवान् शिवने शरीरको ब्रह्माण्ड कहा है और प्रमुख स्थानोंकी चर्चा की है। उसी तथ्यको गोरखनाथजीने भी स्वीकार करते हुए समस्त तीर्थोंको शरीरके अन्तर्गत बताया है। मानव-शरीरमें ही परमात्मा है, जिसका साक्षात्कारकर योगी साधक परमात्मतत्त्वमें स्वयंको स्थिरकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

है। इसमें रमण करनेवाला परब्रह्ममें अन्तर्लय ही जीवात्माके जीवनकी सिद्धि है—

रमि रमिता सौं गरि चौगानं, काहे भूलत हौ अभिमानं।
धरन गगन बिच नहीं अंतरा, केवल मुक्ति मैदानं।

(गोरखबानी, पद १४)

महायोगी गोरखनाथने शरीरकी तुलना नगरसे की है। उन्होंने कहा है—मैंने शरीररूपी नगरको बसाया है। जिस प्रकार नगरकी सुरक्षा की जाती है, उसी तरह योगसाधनाद्वारा मैंने इस कायागढ़पर विजय प्राप्त कर ली है। वे कहते हैं—हे अवधूत! हमारे कायारूपी नगरके महाद्वारका, ब्रह्मरन्ध्रका दर्शन करो। इस कायानगरमें श्वास-प्रश्वासका बाजार लगा है। मैंने अपने ज्ञाननेत्रसे इस बाजारका दर्शन कर लिया है और इस कायानगरका पूरा-पूरा दर्शन करनेके बाद ही अपना विचार प्रकट कर रहा हूँ। साक्षात् परमात्मा इस कायानगरका शाह (बादशाह) है, विचार ही इस नगरका न्यायाधीश है, पंचतत्त्व ही वजीर (मन्त्री) हैं, जिनके संकेतपर इस नगरका शासन चलता है। इस बाजारका अक्षय भण्डार ज्ञान है, जो कभी नष्ट नहीं होता—

अवधू ऐसा नग्र हमारा, तिहाँ जोवौ ऊजू द्वारं।
अधर उधर बजार मड्या है, गोरष कहै विचारं॥
हरि प्राण पातिसाह, साह बिचार काजी।
पंच तत ते उजह दारं मन पवन दोउ हस्ती घोड़ा,
गियांनते अषै भण्डारं॥

(गोरखबानी, पद २७)

उन्होंने आगे कहा है कि कायानगरकी रक्षाके लिये मन और पवन हाथी-घोड़े हैं। मन इस नगरका रक्षक है, जो बहुत शक्तिशाली है। इस नगरका प्रहरी चेतन आत्मा है, वही कोतवाल है। उसके रहते काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर-जैसे बटमार कायानगरमें प्रवेश नहीं कर पाते हैं—

काया हमारे सहर बोलिये, मन बोलिये हुजदारं।
चेतनि पहरै कोटवाल बोलिये, तौ चोर न झंकैं द्वारं॥

(गोरखबानी, पद २७)

का सांगोपांग वर्णन किया है और काया (शरीर)-के महत्त्वको समझाया है। मन, पवन और चेतना इसी शरीरमें निवास करते हैं, जो साधकको ऊर्ध्वगामी बनाकर शिवका साक्षात्कार करते हैं। महायोगी कहते हैं कि इस शरीरमें सदैव अमृत वारुणी सिद्ध होती रहती है, जिसको मतवाला योगी पान करता रहता है। अमृत वारुणीको चुआनेके लिये इक्कीस ब्रह्माण्डकी भट्ठी हैं। जिस प्रकार भट्ठीमें आग प्रज्वलितकर महुआ, अंगूर आदिका अर्क निकाला जाता है, उसी प्रकार इक्कीस ब्रह्माण्डकी भट्ठीमें अमृत वारुणी सिद्ध की जाती है। इच्छा ही कलालिनी है, जो अच्छा-अच्छा प्याला मदिरासे भरकर देती रहती है—

ईकीस ब्रह्मंड भाठी, चिगावै, पींवत सदा मतिवालं।
मनसा कलालिनी भरि भरि देवै आछा आछा मदना प्यालं॥

(गोरखबानी, पद २८)

यह वही वारुणी है, जिसे योगी ब्रह्मरन्ध्रमें मनको उन्मनकर उसमें स्थित होकर इस अमृतासवका पानकर आनन्द प्राप्त करता है। जिन योगियोंने अपने शरीरके भीतर इस मदिराको उतारा और अच्छी तरह प्याला भर-भरकर उसका पान किया, वे जीवन्मुक्त हो गये—

एहवां मद श्रीगोरष केवट्या, बदंत मछिंद्र ना पूता।
जिनि कै वट्या तिनि भरि भरि पीया, अमर भया अवधूता॥

(गोरखबानी, पद २८)

गुरु गोरखनाथजी कहते हैं कि योगको कायागढ़ (शरीर)-पर विजय प्राप्त करनी चाहिये, अन्यथा जीवात्माके इसमेंसे बाहर निकल जानेपर इसकी सार्थकता समाप्त हो जायगी। इस कायागढ़को वशमें कर लेनेपर दीर्घकालतक योगी जीवन्मुक्त होकर निवास करता हुआ अपने स्वरूपमें स्थिर रहता है—

भणंत गोरषनाथ कायागढ़ लेबा।
कायागढ़ लेबा जुगे जुगी जीबा॥

(गोरखबानी, पद ३९)

योगीको शरीरमें ही ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेशकर चन्द्रामृतका पान करते हुए परमात्माका साक्षात्कार कर लेना चाहिये। त्रिभुवन, स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताललोकमें परमामृत जो त्रिपथगाका त्रिकुटीमें स्थित रसद्रव है, का पान करना चाहिये—

बदंत गोरषराई परसि ले केदारं । पांणी पीवो पूता तृभुवन सारं।

(गोरखबानी, पद ४०)

जो शरीर सिद्धिका माध्यम है, साधनोंका धाम है, परमात्माका घर है, वह नीरोग न रहे तो सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। अतः गोरखनाथजीने शरीरको नीरोग और साधनाके लिये उपयुक्त बनानेके लिये अनेक महत्त्वपूर्ण बातें बतायी हैं। शरीरको नीरोग रखनेके लिये उचित आहार-विहारका होना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्णने भी सात्त्विक पुरुषोंके आहारके सन्दर्भमें कहा है कि आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

(गीता १७।८)

महायोगी गोरखनाथजी कहते हैं कि पौष्टिकता और स्वादके लिये किये गये अधिक आहारसे शरीरमें बल बढ़ता है और उसमें चोर अर्थात् कामदेव प्रवेशकर काम-विकार उत्पन्न करता है। अतः संयमित आहार लेना चाहिये—

अवधू निद्रा के घर कालजंजालं अहार के घरि चोरं

(गोरखबानी-सबदी ३५)

अधिक आहार ग्रहण करनेसे इन्द्रियाँ बलवती होती हैं और उनके बलवती होनेपर मनमें विषय-भोग और काम-वासनाकी तृप्तिकी इच्छा जगती है। निद्राका प्रभाव बढ़ता है और साधक कालके वशमें होता जाता है—

अति अहार यंद्री बल करै नासै ग्यांन मैथुन चित धरै।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल ताकै हिरदै सदा जंजाल।

(गोरखबानी-सबदी ३६)

योग-साधनाकी सिद्धिके लिये सात्त्विक आहारका सेवन करना चाहिये। भोजनके पदार्थोंमें नमकीनका

सेवनसे वीर्य पतला और मीठे पदार्थोंका सेवन आरोग्यका नाश करता है तथा शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। गोरखनाथजी कहते हैं कि केवल अन्नसे सिद्ध पदार्थ और जलका सेवन करना चाहिये—

अवधू षारै षिरै षाटै झरै मीठै उपजै रोग।
गोरष कहैं सुणौ रे अवधू अंनै पांणीं जोग॥

(गोरखबानी-सबदी १४०)

जो योगी जीभके स्वादके लिये स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों (नमकीन, खट्टा, मीठा)-का सेवन करता है और गुरुके उपदेशकी उपेक्षाकर मनमाने ढंगसे साधना करता है, वह कभी यौगिक सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है—

जिभ्या स्वाद तत तन षोजै हेला करै गुरु बाचा।
अगनि बिहूँणा बंधन लागै ढलकि जाइ रस काचा॥

(गोरखबानी-सबदी १४३)

योगीको संयमित आहार-विहारसे ही योग-साधनामें सिद्धि मिल सकती है। यदि वह अपने आसनमें दृढ़ है, अल्पमात्रामें भोजन लेता है और निद्राको वशमें रखता है, तो वह बुढ़ापाका शिकार नहीं बनता है और उसे मृत्युका भी भय नहीं होता—

आसण दिढ़ अहार दिढ़ जे न्यंद्रा दिढ़ होई।
गोरष कहै सुणौ रे पूता मरै न बूढ़ा कोई॥

(गोरखबानी-सबदी १२५)

शरीर अन्नमय है, इसका पोषण उचित आहारसे ही होता है। भूख लगनेपर उतना ही भोजन करना चाहिये, जितना कि शरीरकी यात्राके लिये आवश्यक हो। शरीरकी शक्ति क्षीण होनेपर भूखे रहनेका हठ नहीं करना चाहिये, जितना सम्भव हो सके, उतना ही योगाभ्यास करना चाहिये—

धाये न षइबा भूषे न मरिबा अहनिसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेवं।
हठ न करिबा पड्या न रहिबा यूँ बोल्या गोरष देवं।

(गोरखबानी-सबदी ३१)

जो मितभाषी और मिताहारी होता है, वही प्राण और अपान वायुका सन्तुलनकर सुषुम्ना आदि नाड़ियोंका शोधन करते हुए ब्रह्मरन्ध्रसे झरते चन्द्रामृतका पानकर अमृतत्व प्राप्त करता है—

थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ तिस घटि पवना रहै समाइ॥

(गोरखबानी-सबदी ३२)

हठयोग-साधनाका माध्यम शरीर है। नीरोग शरीरसे ही इस साधना-मार्गमें सफलता प्राप्त होती है। शरीरस्थ परमशिवका साक्षात्कार शरीरमें ही सम्भव है। शरीरमें ही ब्रह्मरन्ध्रसे झरते चन्द्रामृतका पान योगसाधक करते हैं और जीवन्मुक्त होकर अमरकाय हो जाते हैं। संयमित आहारसे न कामका वेग बढ़ता है और न निद्रा ही सताती है। वह ऊर्ध्वगामी होकर साधकका सहयोगी बन जाता है।

प्रेरक-प्रसंग—

गलत कामसे बचनेका उपाय

जयपुरके राजा माधोसिंह परम धार्मिक तथा श्रीकृष्णभक्त थे। सबेरे उठते ही सबसे पहले गायके दर्शन करने गोशाला जाते थे। इसके बाद महलके झरोखेसे दूरबीनसे गोविन्द देवजीकी मूर्तिके दर्शन करते। फिर अपने महलमें विराजमान गोपालजीकी मूर्तिके सामने खड़े होकर राजस्थानी भाषामें कहते—अरे गोपाल, तूने ही मुझे राजा बनाया है। मैं अपनी मर्जीसे थोड़े ही राजा बन गया हूँ। अब यह तेरा काम है कि मुझसे दिनभरमें ऐसा काम न होने देना, जिससे तेरी या मेरी बदनामी हो। मेरे हाथों किसीके साथ अन्याय न हो, यह देखना तेरा काम है।

राजा अपना पूरा दिन भगवान्‌के जिम्मे सौंपकर निश्चिन्त हो जाते थे। एक दिन उनके प्रधानमन्त्रीने पूछा—महाराज, आप प्रतिदिन गोपालजीसे ऐसी प्रार्थना क्यों करते हैं?

राजाने उत्तर दिया—मैं जब वास्तवमें हृदयसे यह मानता हूँ कि असली राजा मैं नहीं, गोपालजी हैं तो किसी तरहका अहंकार या छल-कपट मेरे पास नहीं फटकने पाता। अच्छाई-बुराई गोपालजीपर छोड़

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें रामभक्तिका स्वरूप

(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

सिखधर्मके आदि ग्रन्थका नाम श्रीगुरुग्रन्थसाहिब है, जो १४३० पृष्ठोंका है। इस पवित्र धार्मिक ग्रन्थमें रामभक्तिका स्वरूप विशेष रूपसे वर्णित है। सच तो यह है कि इस महान् धार्मिक ग्रन्थमें २५३३ बार 'राम' शब्दका प्रयोग हुआ है, जो रामभक्तिके स्वरूपका ज्वलन्त उदाहरण है। श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें चौथे गुरु रामदासकी निम्नांकित वाणीमें वर्णित है कि रामभक्ति करके भक्त भगवान्‌को भी अपने अनुकूल कर लेता है। वाणी इस प्रकार है—

रतना रतन पदारथ, बहु सागर भरिया राम।
वाणी गुरुवाणी लागे तिनि हथि चढ़िया राम॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ८८२)

परमात्मा सर्वव्यापक है, इसकी चर्चा गुरुग्रन्थमें इस प्रकार हुई है—

सभै घट राम बोलै रामा बोलै।
राम बिना को बोलै रे।

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ९८८)

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें रामभक्तिके स्वरूपको आदि अन्त एक अवतारा, सर्वकला भरपूर घट-घटवासी अलख निरंजनके सन्दर्भमें इस प्रकार देखा गया है—

राम राम बोलि बोलि खोजते बड़भागी।
हरि का ग्रंथ कोउ बतावे, हऊ ताकै पाई लागी॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० १२६५)

अर्थात् मुँहसे तो अनेक लोग 'राम-राम' बोलते हैं, परंतु भाग्यशाली लोग ही रामभक्तिमें लीन होनेके लिये आत्ममन्थन करते हैं, इतना ही नहीं, जो व्यक्ति रामभक्तिको पानेका ठीक रास्ता बता सकता है, गुरु उसके पाँव छूनेके लिये तैयार है।

सच तो यह है कि वही राम अर्थात् परमात्मा इस सृष्टिको रचनेवाला है, जिसकी चर्चा श्रीगुरुग्रन्थसाहिबकी वाणीमें हुई है—

साधो रचना राम बनाई,
इक बिनसे इक असथिरु मानै, अचरजु लखिओ न जाई॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० २१९)

हमें रामकी भक्ति करनी होगी। उसी रामसे ही प्रीति करनी होगी। उस रामका सिमरनकर ही हम अपने जीवनको पूर्णत: सफल कर सकते हैं। इससे सम्बन्धित वाणी श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें इस प्रकार अंकित है—

राम सिमर राम सिमर इहै तेरे काजि है।
माया को संग तियाग प्रभु जू की सरनि लाग॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० १३५२)

रामका नाम एवं रामकी भक्ति एक अनमोल हीरा है। इसे पाकर ही हमें मुक्ति मिल सकती है—

राम राम रतन कोठड़ी गढ़ मंदर एक लुकानी।
सत गुरु मिलै त खोजिए मिस जोति समानी॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ३१५)

इतना ही नहीं, श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें रामभक्तिकी आराधनाके बारेमें यहाँतक कहा गया है—

कलजुग महि बहु करम कमाहि, ना रूति न करम थाइ पाहि।
मलजुग महि राम नाम है सार, गुरमुख साचा लगै पिआर।

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ११२९)

सच तो यह है कि श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें यहाँतक कहा गया है कि रामसे भी बढ़कर रामकी भक्ति करनेवाला है—

झगरा एक निबेरहु राम, जउ तुम अपने जनसौ काम।
इह मन लगा कि जा सउ मन भाजिया,
राम बड़ा कै रामहि जानिया॥
ब्रह्मा बड़ा कि जास उपाइया, वेद बड़ा कि जहाँ ते आइया।
कहे कबीर हऊ भया उदास, तीर्थ बड़ा कि हरि का दास।

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० १३४८)

हिन्दू-धर्मकी रक्षाहेतु बलिदान करनेवाले श्रीगुरु तेगबहादुरजीकी श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें अंकित वाणीमें उनकी रामभक्ति पूर्णरूपसे परिलक्षित होती है—

मन रे काउन कुमति तै लीनी।
पर दारा निंदिया रसि रचयो, राम भगति नहिं कीनी॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ६३२)

इतना ही नहीं, श्रीगुरु अर्जुनदेवजी महाराज जो

जो लोग रामरस और रामरंगमें भींग जाते हैं, उन्हें तो और कुछ सूझता ही नहीं—

राम रसायिणी जो जन गीधे, चरन कमल प्रेम भगती बीधे।
आन रस दीसहि सभि छाए, राम बिना निस्फल संसार॥

श्रीगुरु अर्जुनदेवजी महाराज श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें लिखते हैं कि रामका नाम लेनेसे मुख पवित्र होता है, सब काम पूरे होते हैं और जो भी उसकी भक्ति करता है, उसका नाम लेता है, वही हमारा भाई है, मीत है—

हरि राम राम रामा जप पूर्ण होईय कामा।
राम गोविंद जपेन्द्रिया होआ मुख पवित्र।
हरि जस सुनीयै जिसते सोई भाई मित्र॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० २१८)

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें अंकित निम्नांकित वाणीमें रामकी भक्ति एवं नाम-महिमापर जोर दिया गया है—

राम राम संगि करि विओहार, राम राम राम प्राणात आधार।
राम राम राम कीर्तन गायि, रमत राम सीता रहिउ समाई॥
संत जना मिलि बोलहु राम, सभते निर्मल पूर्ण करम।
राम राम धन संचि भंडार, राम राम राम करि आहार॥
राम राम बीसरि नहीं जाई, करि कृपा गुरु दिया बताई।
राम राम राम सदा सहाई, राम राम राम लिव लाई।
राम राम जपि निर्मल भये, जनम-जनम के किलविख गये।
रमत नाम जनम मरणु निवारै, उचरत राम मैं परि उतारै।
सबते ऊँच राम प्रगास, निसि बासुर जपि नानक दास।

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ८६५)

राम अर्थात् परमात्माकी भक्ति सारी सृष्टिका आधार है। इसलिये हमें उसकी भक्ति करनी चाहिये, जिसका वर्णन श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें इस प्रकार अंकित है—

राम राम बोलि, राम राम, त्यागहु मन के सगल काम।
जिसके धारे धरणि आकाश, घटि घटि जिसका है प्रकास।

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ११८२)

गुरु अमरदासकी रामभक्ति निम्नांकित गुरुवाणीमें पूर्णरूपसे देखी जा सकती है—

राम रमह बड़भागी हो, जल थल मही अलि सोई।
नानक नाम आराधीये, विधन न लागै कोई॥

(श्रीगुरुग्रन्थसाहिब पृ० ५२१)

उपर्युक्त तथ्योंके आधारपर मुझे यह कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं है कि श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें रामभक्ति पूर्णरूपसे परिलक्षित है।

प्रेरक-प्रसंग—

महामनाकी विवेकशीलता

भोजनके विषयमें महामनाकी विवेकशीलता अद्भुत थी। एक बारका प्रसंग है, पद्मकान्त मालवीय वहीं उन्हींके साथ कुलपतिनिवासमें रहकर हिन्दूस्कूलमें पढ़ने जाते थे। गोविन्द (महामनाके कनिष्ठ पुत्र)-का भी परिवार वहीं उसी मकानमें रहता था। एक दिन स्कूल जानेका समय हो गया था, परंतु गोविन्दजीकी रसोई तैयार नहीं थी। फलतः पद्मकान्तने महामनाके चौकेमें जाकर रसोईदारसे खानेकी बात कही। महामना पास ही पूजापर बैठे थे। इनके कानोंमें यह भनक पड़ी। झटसे इन्होंने पद्मकान्तको अपने पास बुलाया और उनके हाथपर एक रुपया रखकर स्कूलके पासवाली दूकानसे मिठाई खरीदकर खानेका आदेश दिया। पद्मकान्त आज्ञानुसार चले तो गये, परंतु रास्तेभर महामनाकी कटु आलोचनासे विरत नहीं हुए, जिन्होंने तैयार भोजन करनेसे उन्हें रोक दिया था। १ बजे लौटनेपर रसोइयाने कहा कि क्यों देर लगायी ? महाराज तुम्हारे लिये बैठे हैं, अभीतक भोजन नहीं किया। बालकको आश्चर्य हुआ। महामनाने पास बुलाकर उससे कहा—देखो, बुरा न मानना। भोजन मैंने तुम्हें करने नहीं दिया, इसका एक गम्भीर कारण है। मेरे चौकेका सब सामान बाबू शिवप्रवाद गुप्तके घरसे आता है। दिन-रातमें कुछ देर ही सही मैं देशके तथा राष्ट्रके हितका काम करता हूँ। अतः मैं तो उसे पचा लेता हूँ, परंतु तुमलोग उसे पचा नहीं सकते। वह देशसेवकके ही पचानेयोग्य अन्न है, विद्यासेवकके लिये नहीं, इसीलिये मेरा चौका अलग है, जिसमें मैं तथा मेरे देशसेवक अतिथि ही भोजन कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। मालवीयजीके इस कथनकी टीका क्या की जाय ? ऐसी विवेकशक्तिको शतशः प्रणाम!

तीर्थ-दर्शन—

गंगातटस्थित बिठूर (कानपुर)-का दण्डीबाड़ा

(श्रीशिवगोपालजी शुक्ल)

उत्तर प्रदेशमें गंगाजीके किनारे बसे कानपुर शहरके केन्द्रके उत्तरमें सड़कमार्गसे २३.४ किमी०की दूरीपर गंगाजीके किनारे ही बिठूर स्थित है। यह गंगानदीके दाहिने किनारेपर स्थित एक हिन्दू तीर्थ-स्थल है। बिठूरमें ही वाल्मीकि-आश्रम स्थित है। ऐसी मान्यता है कि लव-कुशका जन्म और रामायणका प्रणयन यहीं हुआ था। बिठूरके आठ-दस मील पश्चिममें गंगाजीके तटपर एक रमणीक स्थल दण्डीबाड़ाके नामसे विख्यात है। इस स्थानका नाम दण्डीबाड़ा इस कारण पड़ा है, क्योंकि यहाँपर दण्डी स्वामी रहते हैं। इस स्थानके उत्तर दिशामें गंगाजी लगभग पचीस-तीस फीट नीचे बहती हैं। यह स्थान लगभग चालीस एकड़में फैला है। यहाँपर दण्डी स्वामियोंकी दर्जनों कुटिया बनी हुई हैं, जिसमें एक-एक व्यक्ति रह सकता है। यह स्थल जंगल-सा प्रतीत होता है। वास्तवमें यह स्थान बगीचा एवं फुलवारीका मिश्रण है। यहाँपर आम, जामुन, बिल्व, अमरूद, फालसा, आँवला आदि फलोंके वृक्ष तथा बाँसकी कोठियाँ भी हैं। फूलोंमें पीला कनेर, लाल (गुलाबी) कनेर, पारिजात, सदाबहारके पेड़ हैं। यहाँपर एक शिव-मन्दिर एवं विशाल कुआँ भी है। वृक्षोंके मध्यमें कुटिया बनी है। कुछ कुटिया, जो गंगाजीके किनारे बनी हैं; बरसातमें बाढ़के कटानके कारण पहाड़ीके ऊपर नजर आती हैं, रहनेके लायक नहीं हैं।

भोजन बनानेके लिये एक बहुत बड़ा हाल (भोजनालय) है। राशन आदि सामग्री रखनेके लिये अलग स्थान है। कर्मचारियोंके लिये अलग स्थान है। यहाँपर दूधके लिये गायें भी हैं, जिनके रहनेके लिये बहुत बड़ा टीन शेड बना है। उनके खानेके लिये पक्की नाँदें भी हैं। इनमें पचासों गायें तथा बछड़े, बछिया रहती हैं। इस दण्डीबाड़ामें अस्सी बीघा जमीन भी शामिल है, जिसमें बैलोंद्वारा खेती करायी जाती है। इस सम्पूर्ण व्यवस्थाएँ करता है। एक-एक कुटियामें एक-एक संन्यासी रहता है, जो आषाढ़ शुक्ल एकादशी (जिसे देवशयनी एकादशी कहते हैं)-से चार महीनों अर्थात् श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिककी शुक्ल एकादशी (जिसे देवोत्थानी एकादशी कहते हैं)-तक एक ही स्थानपर रहकर चले जाते हैं; क्योंकि एक ही स्थानपर रुका हुआ साधु अच्छा नहीं माना जाता है। इसीलिये कहा गया है कि ***'रमता जोगी बहता पानी'***। जो वयोवृद्ध संन्यासी हैं, वे स्थायी रहते हैं।

आमके मौसममें लंगूरोंका झुण्ड आता है और मौसम समाप्त होनेके बाद स्वतः, पूर्वदिशामें गंगाजीके रास्तेसे लगा हुआ एक बहुत बड़ा जंगल है, ये बन्दर वहीं चले जाते हैं। वर्तमानमें यह जंगल बहुत कम रह गया है। लोगोंने जंगलको काटकर खेती करना प्रारम्भ कर दिया है।

दण्डीबाड़ासे लगा हुआ एक और स्थान है, जो इसके पूर्वमें स्थित है। यह स्थान बरगदिया घाट कहलाता है। दण्डीबाड़ाके अधिक साधु-सन्त यहींपर स्नान करने आते हैं; क्योंकि वहाँपर गंगाजी बहुत नीचे बहती हैं, यद्यपि कच्ची सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। इस घाटका क्षेत्रफल आठ-दस एकड़का होगा। यहाँपर एक मन्दिर शिवजीका बना है। साथमें बरामदे आदि भी बने हैं। कुछ बरामदे जो तटके पास थे, टूट गये हैं। इसके साथ-साथ कुटिया भी हैं। एक बड़ी कुटियाके नीचे साधनाके लिये तहखाना है। यहाँ पीपलके वृक्ष भी हैं नीमके वृक्ष बहुत विशाल हैं। बाँसकी कोठियाँ हैं। बेल (बिल्व)-के कई पेड़ हैं। आमके वृक्ष कम हैं। पीले कनेरके वृक्ष अधिक हैं। कहते हैं कि इस स्थानपर एक बाबा रहते थे, उनका नाम बरगदिया बाबा था, इसलिये इस घाटका नाम बरगदिया घाट पड़ा। यद्यपि घाट कच्चा है, परंतु अपनेमें बड़ा ही रमणीक है।

अपने पैर नहीं छुआते थे। कहते हैं कि वृद्धावस्थामें उनके शरीरमें कीड़े पड़ गये थे। कानपुरके धनाढ्य व्यक्ति वहाँसे डॉक्टरोंको इनके इलाजके लिये लाते परंतु वह अपना इलाज नहीं कराते थे। बहुत पीछे पड़नेपर वह गंगाजीकी बालूमें लोटकर अपना शरीर दिखाते और कहते, अब तो कुछ नहीं है। उनका कहना था कि मेरे पूर्वजन्मके कुछ अनुचित कर्म हैं, उन्हें मुझे भोगने दें। मुझे दवाईके लिये बाध्य न करें।

इसी बरगदिया घाटके पूर्व २०० मीटरकी दूरीपर गंगा नदीपर एक पक्का घाट है। इसे सब लोग पक्का घाटके नामसे सम्बोधित करते हैं। गंगाघाटपर बैठनेवाले पण्डे, जिन्हें गंगापुत्र कहा जाता है, इन लोगोंने बताया कि उत्तर प्रदेशकी राजधानी लखनऊके एक सेठने यह घाट बनवाया था। इसके मानचित्रमें यह घाट गंगाजीकी बीच धारामें बना दिखाया गया है। तीस वर्ष पूर्व नहानेकी सीढ़ियाँ टूटकर नीचे चली गयी हैं। अब नहानेके लायक नहीं हैं। सीढ़ियोंके पहले ५० गजकी दूरीपर शिवजीका एक मन्दिर है तथा उसीके बराबर एक दूसरा मन्दिर भी है। इस मन्दिरमें कोई मूर्ति आदि नहीं है। कहते हैं कि यह मन्दिर सती मन्दिर है।

पक्का घाट क्षतिग्रस्त होनेके कारण इसके पूर्वमें कच्चा घाट है, वहींपर अब स्नान होता है। इस घाटके पूर्वमें श्मशान घाट भी है। यहाँपर एक बहुत ही विशाल मन्दिर है, जिसमें चारों ओर खुले बरामदे हैं। इस मन्दिरमें शिवलिंग एवं नन्दीकी विशाल प्रतिमा है। शिव मन्दिरके ऊपर स्वर्णनिर्मित सूर्यचक्र है।

गंगाजीके उत्तरमें बरसातमें पानी कई मीलोंतक चला जाता है। गंगाजीके उस पार खेती होती है। गाँव दूर हैं, वहाँके लोग इन मन्दिरोंको देखकर इस ओर आते हैं। ये मन्दिर दिशासूचकका काम करते हैं। इधर आनेके लिये नावका साधन है, दण्डीबाड़ाके पश्चिममें गंगाके

हैं, वे ही नाव चलानेका काम करते हैं। कुछ वर्षों पूर्व बरगदिया घाट और पक्के घाटके मध्य पीपोंका पुल बन गया है, जिसे बरसातके पूर्व खोल लिया जाता है। जबतक पीपेका पुल नहीं बनता है, नावोंका सहारा लिया जाता है।

पक्के घाटके पश्चिममें जहाँ पीपोंका पुल है, इस स्थानपर पक्के पुलके लिये नाप-जोख हो रही है, क्योंकि पक्के घाटके पूर्व कच्चे घाटके सामने दक्षिणमें तीन किलोमीटर दूरीपर जी०टी० रोड एवं रेलवेकी बड़ी लाइन भी है, जो पूर्वमें कानपुर एवं पश्चिममें फर्रुखाबादकी ओर जाती है। यहाँसे पक्का डामर रोड बन गया है, इससे आवागमनके साधन हो गये हैं। इस पार शिवराजपुर तथा उस पार वरजिपुरमें रेलवे स्टेशन है। वर्तमान समयमें एक पक्का टीन शेड दाह-संस्कारहेतु शासनद्वारा निर्मित हुआ है। इससे बरसातमें लोगोंको सुविधा हो गयी है।

गंगाजीसे एक किलोमीटर दूर इसी पक्की सड़कपर एक स्थान खेरेश्वर है। यहाँपर खेरेश्वर महादेवका भव्य मन्दिर है। इसके आसपास पचास-साठ एकड़में पेड़-पौधे, मैदान, भवन एवं दुकानें आदि हैं। यहाँपर शिवरात्रि एवं श्रावणमासके सोमवारको मेला लगता है। आजकल तो हमेशा यहाँ रौनक रहती है, क्योंकि आने-जानेके साधन हो गये हैं। गाँवोंतक सड़कें बन गयी हैं। गंगाजीका जल शंकरजीको चढ़ानेका यहाँ रिवाज है। अत: लोग छोटे-छोटे मिट्टीके बर्तनोंमें पैसे लेकर गंगाजल देते हैं। फूल भी मालियोंद्वारा मिल जाते हैं। मिठाईकी दुकानें हमेशा प्रात:से शामतक खुलती हैं। यहाँके हलवाइयोंकी खोवेकी गुझिया प्रसिद्ध है। शृंगारके समय इसका भोग लगाया जाता है।

मन्दिरके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा तालाब है। वह कभी सूखता नहीं है। पानी कम होनेपर बम्बा (छोटी

कहते हैं कि यह मन्दिर महाभारत-कालमें भी था। इसमें एक पक्की सीढ़ियोंवाला घाट भी है। इस तालाबमें कमलके फूल खिले रहते हैं। पास ही एक बहुत बड़ा कुआँ भी है।

इस स्थानका नाम खेरेश्वर क्यों पड़ा—इस विषयमें यहाँके लोगोंका कहना है कि यहाँ पहले सघन जंगल था। पासके गाँवोंके लोग यहाँ अपने पशुओंको चराने आते थे। कहते हैं कि एक चरवाहेने देखा कि एक गाय जब शामको वापस लौटती है, तो उसका दूध उसके थनोंसे गायब मिलता है, अतः उसने दूसरे दिन उस गायपर ध्यान रखा, तो देखा कि वह गाय एक स्थानपर खड़ी रहती है, जब उसका दूध निकल जाता है, तो चल देती है। पासहीके पश्चिममें एक गाँव है, वहाँके लोगोंने जब गायके बारेमें ऐसा सुना तो बताया कि इस स्थानको खोदा जाय, तब इसका रहस्य खुल सकता है। फिर जब जमीन खोदी गयी तो एक शिवलिंग प्राप्त हुआ। इसके बाद एक भव्य शिवमन्दिरकी स्थापना हुई।

विश्वयोग—महायोगीकी ही जलायी ज्योति

(डॉ० श्रीकन्हैयासिंहजी)

महायोगी गोरखनाथ एक युगपुरुष और आध्यात्मिक क्षेत्रके अद्वितीय रत्न थे। वे जिस समय अवतीर्ण हुए, वह घोर अन्धकारका युग था। हमारे प्रेरणाके स्त्रोत मठ-मन्दिर विलासिताके केन्द्र बन गये थे और साधकोंकी स्थिति भी दयनीय हो गयी थी; क्योंकि योगकी जो साधना वेद-शास्त्रसे अनुमोदित थी, वह भी 'मद्यं मांसं मीनं च····' इत्यादिके उद्घोषकों और तदनुरूप आचरणके कारण भ्रष्ट हो गयी थी। देशपर इस्लाम-धर्मावलम्बियोंकी विभिन्न जातियोंके आक्रमणके कारण सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रोंके ऊपर ऐसे संकटके बादल मँडरा रहे थे कि हमारी अस्मिता ही खतरेमें पड़ी दीख रही थी। राजे-रजवाड़े परस्पर कलह और अपनी विलासिताके कारण उनका प्रतिरोध भी नहीं कर सकते थे। ऐसेमें आगे चलकर तुर्कोंकी कई जातियाँ दिल्लीके तख्तपर बैठीं, धर्मान्तरण भी तलवारके जोरपर हो रहा था। नारियोंपर अत्याचार हो रहा था।

इतिहासके इस शून्यप्रहरमें महायोगीने समाजको एक सुरक्षा-कवच प्रदान किया, वह था—योग। योगकी जिस साधनाका उन्होंने उपदेश किया, उसे स्वयं करके उन्होंने समाजके सामने एक आदर्श उपस्थित किया। ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-निग्रहके साथ साधनात्मक योगद्वारा उन्होंने साधकों और साधना-केन्द्रोंको पुनः लोक-प्रेरणाका स्थल बना दिया। साथ ही समाजके लिये भी उन्होंने आदर्श गृहस्थ-जीवन जीनेका सन्देश दिया, जिसमें नशीले पदार्थोंके सेवनके निषेध-जैसे कई सन्देश थे। इस प्रकार दसवीं-ग्यारहवीं शतीमें आध्यात्मिक और सामाजिक क्रान्तिके महानायकके रूपमें उन्हें ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई कि उसका प्रभाव शताब्दियोंतक साधकों और समाजके घटकों—दोनोंपर पड़ा। इसका प्रमाण साहित्य है, जो समाजकी चित्तवृत्तिका प्रतिबिम्ब होता है। पूरे सन्त-साहित्य और सूफी-साहित्यपर महायोगी गोरखनाथका प्रभाव पड़ा और आज भी सारा विश्व, जो देश और धर्मकी सीमाओंके पार योगको मान्यता दे रहा है, वह महायोगी गोरखनाथकी ही जलायी हुई ज्योतिका प्रभाव है।

पुण्यसलिला शिप्राका माहात्म्य

[स्कन्दपुराणके आधारपर]

भारतकी प्रसिद्ध मोक्षदायिनी सप्तपुरियोंमें अवन्तिकाकी गणना की जाती है। उज्जयिनी-क्षेत्र शैव और वैष्णव-आराधना—दोनोंकी पुण्यभूमि है। भगवान् महाकालद्वारा अधिष्ठित नगरी उज्जयिनी प्रतिकल्पा भी कहलाती है। प्रत्येक कल्प, प्रत्येक युगमें उपस्थित शिप्रानदीके तटपर अवस्थित यह पौराणिक नगरी हजारों वर्षोंसे विश्वके आकर्षणका केन्द्र रही है। मोक्षदायिनी सप्तपुरियोंमें अवन्तिका (उज्जयिनी)-का महत्त्व इसलिये अधिक माना गया है कि यहाँका ज्योतिर्लिंग दक्षिणमुखी है। यहाँ महादेव महाकालके रूपमें निवास करते हैं। यहाँ शिप्रा-तटपर सिंहस्थ (कुम्भ)-का मेला लगता है। यहाँ माँ हरसिद्धिकी शक्तिपीठ शिप्रातटपर ही स्थित है। मोक्षदायिनी शिप्रानदीके किनारे मोक्ष मिलनेका महत्त्व शास्त्रोंमें वर्णित है। उल्लेख है कि शिप्राके तटपर ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने पिता दशरथके मोक्षके लिये पूजा की थी। तभीसे शिप्राके एक घाटको रामघाट कहा जाता है। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने महाकालवनमें स्थित ऋषि सान्दीपनि-आश्रममें शिक्षा ग्रहण की और ६४ दिनमें ६४ विद्याएँ सीख लीं।

स्कन्दपुराणके सात खण्ड हैं—माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ती, नागर तथा प्रभास। इस पुराणका पंचम खण्ड अवन्तीक्षेत्र-खण्ड है। इसमें वर्णन आया है कि इस संसारमें पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र महाकाल वन है, जहाँ शिप्रा नामक एक श्रेष्ठ नदी है, जो पापियोंको तारनेमें संसारमें प्रसिद्ध है। यह सभी पातकोंका नाश करती है। जिसको भी इस नदीका स्पर्श हो जाता है, उसके सभी पातक नष्ट होकर शिवलोक प्राप्त होता है, जब वेदव्यासजीने सनत्कुमारमुनिसे पूछा कि शिप्रा नदीका 'अमृतोद्भवा' नाम संसारमें कैसे प्रसिद्ध हुआ, इसकी कथा सुनाइये। तब सनत्कुमारमुनि बोले कि हे व्यासजी! सुनो, यह कथा मैं सुनाता हूँ।

शंकर हाथमें कपाल लेकर भिक्षाके लिये नागोंके लोक पातालमें स्थित भोगवतीपुरीमें गये। वे प्रत्येक घर जाकर कहने लगे—भिक्षा दीजिये। परंतु किसीने भी उन भूखे शिवको भिक्षा प्रदान नहीं की। वे नागलोकसे बाहर निकले, तो उन्होंने बाहर इक्कीस कुण्डोंका अमृत पी लिया। सभी कुण्ड खाली हो गये और भगवान् रुद्र उस अमृतको पीकर चले गये। नागलोकमें जब पता चला, तो पूरा नागलोक कम्पित हो गया। सभी पातालवासी सशंकित होकर कहने लगे कि ऐसा कार्य किसने किया, जिससे इन कुण्डोंका अमृत चला गया। ऐसा विचारकर नागलोकके सभी वासुकि आदि मुख्य नागगण इस महान् अतिक्रमणकी शंकासे बाहर निकलकर परस्पर विचार-विमर्श करने लगे कि अब हम क्या करें? कहाँ जायँ? किसने कुपित होकर इस उत्तम अमृतका हरण कर डाला? अमृत ही हमारा जीवन है और अब उसके बिना हमारा जीवन कैसे चलेगा? इस प्रकार अनेक शंकाएँ करते हुए सभी नागगण अपनी स्त्रियों और बच्चोंको लेकर भगवान् विष्णुकी शरणमें चले गये—

येनास्माकं कोपितेन हृतं चामृतमुत्तमम्।
अस्माकं जीवनं तस्मात्कथं जीवन्तु पन्नगाः॥
इत्युक्त्वा पन्नगाः सर्वे सस्त्रीबालपरिग्रहाः।
हरिं च जग्मुः शरणं मनसा परिशङ्किताः॥

(स्क० पु० अवन्तीखण्ड, अध्याय ५१)

तब उन सभीपर कृपा करके एक आकाशवाणी हुई कि हे नागगणो! आपने रुद्रदेवका तिरस्कारकर उपेक्षा की है। ध्यानसे सुनिये। जब भगवान् रुद्रदेव आपके यहाँ घर-घर पहुँचे, उन्होंने अपने हाथमें कपाल ले रखा था और अतिथिके रूपमें भूखसे युक्त थे। उस समय इस भोगवतीके किसी निवासीने उन्हें भिक्षा नहीं दी। तब क्षुधायुक्त एवं धर्मके स्वामी भगवान् रुद्रने नगरके बाहर आकर कुण्डोंमें भरे अमृतको पी लिया। इसलिये हे

भूलोकपर जाओ। वहाँ एक श्रेष्ठ नदी है, जिसका नाम शिप्रा है। यह नदी त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाली है तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है, जिसके दर्शनमात्रसे सभी पातक दूर हो जाते हैं, उसके पास जाकर उस नदीमें विधिवत् स्नान करो तथा देवाधिदेव महाकालका दर्शन-पूजन करो। इनका पूजन और शिप्रास्नानसे आपके कुण्ड पुनः भर जायँगे।

इस आकाशवाणीको सुनकर सभी नागगण अपने स्त्री-बच्चोंको साथ लेकर महाकालवनमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन सभीने तीनों लोकोंके द्वारा पूजित उस शिप्रा नदीके दर्शन किये, जो सभी ओरसे पुष्पयुक्त थी, जहाँ चारों तरफ वृक्ष शोभा बढ़ा रहे थे, जिसमें हंस और बत्तख तैर रहे थे, जो मणि, मुक्ता एवं प्रवालके वर्णोंसे शोभित थी, जिसमें मणिमय सीढ़ियाँ बनी थीं और जिसमें कमलके पुष्प खिले थे। वहाँ भृगु, शृंग तथा आंगिरस ऋषिगणोंके सहित सभी ऋषिगण, गन्धर्वगण, देवर्षिगण, नारद आदि सभी देवगण, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, सिद्धगण, रुद्रगण, पितरदेव आदि सभी अपने निर्मल भावसे मनको स्थिरकर सन्ध्योपासना कर रहे थे। पृथ्वीके राजा भी यहाँ आकर निर्वाण-पद प्राप्त करते हैं। साथ ही ऋषि-पत्नियाँ, देवकन्याएँ, अप्सराएँ आदि सभी अपने स्वामीगणोंके साथ वर्णाश्रमके अनुसार उपासनामें रत थे। यहाँ उनके स्थानोंसे आनेवाले सभी सिद्ध योगीश्वर शान्त प्रकृतिवाले तपस्वीगण, व्रतधारी सन्तगण अनेक दिशाओंसे आये हुए यात्रीगण, पुरुषों तथा स्त्रियोंसे युक्त होकर सभी स्नान आदि कर्म कर रहे हैं तथा महादान आदि दे रहे हैं।

दान देनेके बाद उन सभी नागों एवं उनके मुख्य नागगणोंने भक्तिपूर्वक, पंचांग विधिसे उस शिप्रानदीमें स्नान किया और यक्षकर्दमका लेपन किया, अम्लान कमलोंकी माला एवं पुष्प, अक्षत, वस्त्र, चन्दन लेप, सुगन्धित धूप, दीप-नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, कर्पूर, आरती आदिसे श्रीमहाकाल शिवका पूजन किया और अमृत पुनः भर जाय; इस कामनासे प्रार्थना प्रारम्भ की।

उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष दर्शन दिये और कहा—हे सर्पगणो! सुनो, मैं नागलोकमें प्रतिदिन भिक्षा माँगने आता हूँ। मैं आपकी उस भोगवती नगरीमें भूखसे पीड़ित घर-घर अपने हाथमें भिक्षा-कपाल लेकर तथा कन्था एवं चीरको धारण करके गया था। वहाँपर मुझे भिक्षा प्राप्त नहीं हुई तो मैं घर आ गया। इसी पापके कारण आपके सुधा-कुण्ड सूख गये। अब आपने जो शिप्राजीमें स्नान-दान-पूजन किया, उसके पुण्यके प्रभावसे सभी पाप नष्ट हो गये और आपके पुण्योंका उदय हो गया है। अब आप अपनी पत्नी-बच्चोंको लेकर पुनः नागालय चले जाओ। यह सब पुण्य इस शिप्राजीका है, जिसके दर्शनमात्रसे मैं भी प्राचीनकालमें पापसे मुक्त हो चुका था। इस शिप्रा नदीमें स्नानका कितना पुण्य है, यह बतलाना सम्भव नहीं है। संसारमें इसके दर्शनमात्रसे शिवरूपकी प्राप्ति हो जाती है। आप सभी उत्तम नागोंने इस पुण्यसलिला नदीमें स्नान किया, इसलिये इसके पुण्यके प्रभावसे आपके प्रत्येक घरमें सुधा प्राप्त रहेगी। अब आप सब इस शिप्राका जल ले जाकर अपने कुण्डोंमें डालिये, जिससे सभी इक्कीस कुण्ड अमृतसे भर जायँगे और स्थिर रहेंगे।'

यह बात सुनकर सभी नाग शिप्राजलको पात्रोंमें भरकर अपने मस्तकोंपर रखकर और भगवान् शंकरको प्रणामकर पाताललोक चले गये। तभीसे इसका '**अमृतोद्भवा**' नाम पड़ा। जो भी प्राणी इस पुण्यसलिला शिप्रा नदीमें स्नान-दान आदि करता है, पुण्य-कार्य करता है, वह अपनी विपत्तियोंसे मुक्त होकर, पापोंसे छुटकारा पाकर पुत्र-स्त्रीसहित सुखपूर्वक निवास करता है, उसका प्रियजनोंसे वियोग नहीं होता। उसका मित्रोंसे कभी द्वेष नहीं होता, दरिद्रता प्राप्त नहीं होती।

[प्रस्तुति—प्रो० श्री बी० के० कुमावतजी]

संत-चरित—

दादूपंथी संत श्रीसालिगरामजी

(प्रो० श्रीरोहितजी नारा)

हरियाणा प्रदेशकी संतप्रसवा भूमिपर समय-समयपर ऋषि-मुनि, साधु-संतोंने अवतार धारणकर संसारका उपकार किया है। इसी उत्तम धरापर जिला रोहतकमें संतभूमि ग्राम माजरा (दुबलधन)-में संतप्रवर दादा सालिगरामजीका जन्म हुआ। बाबा मोहनदास, स्वामी नितानन्द आदिकी चरणरजसे पवित्र इस ग्राममें सत्संगका प्रारम्भसे प्रचार था। परम ईश्वरभक्त चौधरी नन्दराम और माता सुशीलाके घर अठारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें श्रीसालिगरामजीका जन्म हुआ। बाल्यावस्थामें एक बार आप रोगग्रस्त हो गये, तब एक सिद्ध महात्माने आपके सिरपर हाथ रखकर कहा—'यह बच्चा तो अमर है, इसे दुःख कैसा? यह तो दूसरोंका दुःख भी हटायेगा और छाप लगायेगा।'

समयानुसार आपका विवाह हुआ और दो पुत्रोंसहित भरी-पूरी गृहस्थी हुई, पर विधिका लेख! अकालमें आपका बड़ा पुत्र और स्त्री दोनों चल बसे। घरमें बचे आप, आपकी वृद्ध माता और छोटा पुत्र सुखदेव। आपकी मातृभक्ति अनुपम थी। माताने गंगा-स्नानकी इच्छा प्रकट की, उनकी इच्छाके अनुसार पुत्र सुखदेवके साथ माताको पालकीमें बिठा गंगाजीको चले। परंतु यमुनाजीके निकट आते ही माताका शरीर पूरा हो गया और शरीर यमुनाजीमें प्रवाहित कर दिया। फिर ज्ञान होनेपर दिव्य दृष्टिसे देखा कि माँ गंगाजीमें पहुँच गयी हैं। इसपर उन्होंने कहा—***'माँ! बहाई जमनामें पाई गंगा में 'या मति सा गति''।***

बचे पिता-पुत्र, परंतु पुत्र सुखदेवकी भी अन्तवेला आ गयी। मृत्युशैय्यापर लेटा हुआ सुखदेव पिताकी ओर देख रहा था। सालिगराम भी ताड़ गये और बोले—'कहो बेटा! जो कहना चाहते हो।' सुखदेवने कहा—'हे पिताजी! अगर आप मानो तो कहूँ।' सालिगरामने कहा—'हाँ, मानूँगा बेटा! जो कहना चाहते हो कहो।' सुखदेवने कहा—'हे पिताजी! मैं तो मर गया, इसमें सन्देह नहीं है, परंतु आप परमेश्वरकी राहमें मरना, यह

यों कहकर सुखदेवने भी प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया आप बोले—'था तो बेटा, पर गुरु हो निकला, अच्छ बेटा सुखसे जाओ ऐसा ही होगा।'

आपका संसारसे वैराग्य हो गया यहाँतक कि घर-जमीन साधु-ब्राह्मणोंको दान कर दी। अपने लिये केवल कुछ जमीन और एक कोठी रखी। हजामत करा कपड़े रँगनेके लिये तैयार हुए, इतनेमें किसीने कहा, 'आज शनिवार है।' आपने कहा कल सही, कथा सुनने चले गये, वहाँ दादूदयालजीकी साखी सुनी—

ना बन गये न घर रहे, ना कुछ किया कलेश।
दादू-घर ही में घर पाइयाँ, सतगुरु के उपदेश॥

यह उपदेश सुन फकीरीका ख्याल दूर हो गया और कहा—

'शनिवार हमारा प्यारा और दादूजी गुरु' कालान्तरमे दादूजीका मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। साधनका स्वर्णिम काल शुरू हुआ। एक दिन मायाका वचन श्रवण हुआ—

उठत मारूँ बैठत मारूँ, मारूँ जगत सूता।
तीन लोक में भग पसारूँ, कहाँ जावे अवधूता॥

इसपर आप घबराये, क्या करें कोई रास्ता नहीं इतनेमें गुरु गोरखनाथजीने मार्ग दिखाया—

उठत सिमरूँ बैठत सिमरूँ, सिमरूँ जागत सूता।
तीन लोकसे न्यारा खेलूँ, मैं गोरख अवधूता॥

धीर बँधी और मार्ग मिला। श्रीनाथजीकी कृपासे अटल धुन लग गयी। रातको भजन करते समय छतसे चोटी बाँध लेते थे। एक दिन आकाशवाणी हुई—'जो तुम चाहते हो १२ वर्षमें होगा।' आपने उत्तर दिया—'बारह वर्षमें कैसा, गुरुप्रतापसे १२ मासमें ही होगा। इसी समय श्रीस्वामी नितानन्ददयालजीका मार्गदर्शन मिला—

एक पलक के भजन पर, तुले सर्व संसार।
नितानन्द निज नाम की, महिमा अगम अपार॥

यह सुनते ही पलक खुली-की-खुली रह गयी और नेत्र पाषाणवत् हो गये, दृष्टि अन्तर्मुखी हो गयी। नौ

आपकी अनन्य सेवा करते रहे।

संत कबीरजीने प्रकट हो मार्ग दिखाया—

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहें कबीर ता जीव को, कलप न पावै कोय॥

कबीरजीकी वाणीसे प्रभावित होकर आप २७ दिनतक एक आसनमें भजन करते रहे। समाधिमें तीनों लोकोंकी यात्राकर सतो, रजो और तमोगुणसे पार हो गुणातीत हो गये। मायाका आवरण हट गया और अडोलके दर्शन हुए। आगे दुतिया दुर्मति भाग गयी, सर्वत्र अद्वैतका दर्शन हुआ—

अब हम समझे आप को, आपा को खोई।
सकल भेष आपे भरै, दूजा नहीं कोई॥

यों तो तमाम दुनिया मस्त पर खुदमस्ती-सी मस्ती कहाँ?

दादा सालिगराम गाने लगे—

मैं था मैं था मैं था।
लैला मजनूँ 'मैं' था, हीर-राँझा 'मैं' था, शीला- महता 'मैं' था।
कृष्ण-गोपी 'मैं' था, पीर-पैगम्बर 'मैं' था, ईसा- मरयम 'मैं' था।
गोरख-मछिन्द्र 'मैं' था, धर्मदास-कबीर 'मैं' था।
जो कुछ था 'मैं' था।

संवत् १९४० वि० (माघ शुक्ल ४)-को बावल छिड़ी, १९४२की माघ शुक्ल ८ तक २ वर्ष खूब सत्संग जमा। आपकी कृपा जिस जीवपर हो जाती, प्रभुप्रेमका अधिकारी हो जाता, जैसे प्रभु गौर हरिके स्पर्शमात्रसे कृष्णप्रेम प्रकट हो जाता था, वैसे ही आपकी कृपादृष्टिसे अनेक जीव ईश्वरोन्मुख हुए। एक बार रात्रिको आप मस्त हो उद्दाम नृत्य करने लगे, साथ ही ४० सत्संगी भी नृत्य करने लगे। गाँववाले ऐसा उद्दाम नृत्य देख आश्चर्यमें डूब गये। फौजदारीमें शिकायत कर दी गयी कि ४० लोग पागल हो गये हैं, किसीको मार डालेंगे या नुकसान पहुँचायेंगे। इसपर रोहतकसे डॉक्टर रहमत अलीने जाँच कर कहा कि ये पागल नहीं, बल्कि पहुँचे हुए खुदावंद सिद्ध महात्मा हैं। आप समदर्शी संत थे, एक दिन अपनी मौजमें आकर आपने टिप्सी भंगीको कोली (अंक)-में भर लिया।

लोगोंने कहा सालिगराम पागल हो गया।

आप कहा करते—'हम पंथ नहीं चलाते, हम सत्संग रखेंगे।'

आपकी कृपासे अनेक सत्संगी भगवान्‌में लगे। आप कहते किसी-किसी मण्डलीमें एक या दो हंस होते हैं, पर हमारे यहाँ हंसोंकी डार उड़ेगी।

एक बार धोती और चादरको छोड़कर सब कुछ दे डाला।

दूसरी बार एक चमारकी बेटीकी आशा देखकर उसे सर्वस्व दे दिया। एक दिन कहा—'भोडूराम! सर लिया मार कूठले (अनाज संग्रहका बड़ा पात्र)-को मूसल और भर दे झील' हुक्मके साथ सारा सामान गलीमें रख दिया, उठानेवाले टूट पड़े। आपने कहा—'खूँटीतक ना रहने पाये, देखो कोठरीमें कुछ ना हो, जो मेरे पास आयेगा उसका भी यही हाल कर दूँगा।'

कितने ही लोग आपकी शरणमें आकर रोगमुक्त हुए, निस्संतानोंको पुत्र प्राप्त हुए, मृतकोंको जीवनदान मिला, नेत्रहीनोंको नेत्रज्योति मिली और सबसे बड़ी बात आपके सत्संगियोंमेंसे ४० लोगोंको आत्मसाक्षात्कार हुआ और मुक्त हुए। आपने माघ अष्टमी १९४२ को जिसे भीष्म अष्टमी कहा जाता है, लोगों—सत्संगियोंके देखते-देखते वस्त्रकी भाँति देहत्याग कर दिया। दोहा—

सागी भीष्म अष्टमी, उन्नीस सौ बयालीस।
देह तजी ज्यों कापड़ा, साखी जन चालीस॥

दादाने १९४२ में नश्वर देहका तो त्याग कर दिया, लेकिन महाप्रयाणसे पूर्व कह दिया—'मैं शरीर नहीं रखूँगा, वचन रखूँगा, मरूँगा नहीं, किंतु हाड़-चर्म नहीं रखूँगा, वचन और विचार हमारी दो चीज रहेंगे।'

वस्तुतः सच्ची कृपा वही है, जो संसारसे मनको पलटकर भगवान्‌में लगा दे, दादा सालिगरामजीके जीवनमें अपार दुःखोंका आगमन हुआ, पर वही दुःख ईश्वर-प्राप्तिमें सहायक सिद्ध हुए।

नितानन्द वह दुःख भला, साहेब आवै याद।

चरक-संहितामें गोमूत्रके उपयोग

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

आयुर्वेदने गायको एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राणी माना है। धर्मशास्त्र तो इसे परमात्माकी पोषणी शक्ति ही मानते हैं। गायका दूध तो हितकर है ही, साथ ही इसका मूत्र भी अनेक रोगोंकी चिकित्सामें हितकर है। चरक-संहितामें आठ प्रकारके प्राणियों यथा—भेंड़, बकरी, गो, भैंस, हथिनी, ऊँटनी, घोड़ी और गधीके मूत्रके गुणोंका वर्णन किया गया है—

अविमूत्रमजामूत्रं गोमूत्रं माहिषं च यत्॥
हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्य हयस्य च खरस्य च।

(चरक-सूत्र १।९३-९४)

इसमें गोका मूत्र मधुर रसयुक्त होता है, कृमियोंका नाश करता है। कुष्ठ और खुजली-जैसे चर्मरोगोंको नष्ट करता है। पिये जानेपर उदर रोगोंका नाश करता है।

गव्यं समधुरं किञ्चिद् दोषघ्नं क्रिमिकुष्ठनुत्।
कण्डूं च शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम्॥

(चरक-सूत्र १।१०१)

गोमूत्रकी अपनी एक अलग विशिष्ट गन्ध होती है। शिलाजीतका एक प्रकार गोमूत्रकी गन्धके समान होता है, इसलिये उसे गोमूत्रगन्धी शिलाजीत कहा जाता है। पित्तजन्य रक्तपित्तमें निकलनेवाला रक्त गोमूत्रके समान होता है।

चरक-संहितामें विभिन्न प्रकारके योगोंका वर्णन है, जिनके निर्माणमें गोमूत्रका प्रयोग होता है।

गुल्म रोगकी चिकित्सामें निर्दिष्ट तैलपंचक योगका एक घटक गोमूत्र ही है।

तैलं प्रसन्ना गोमूत्रमारनालं यवाग्रजम्।
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत्॥

(चरक-चिकित्सा ५)

रक्तज गुल्ममें दूध, गोमूत्र और यवक्षारसे युक्त दशमूल क्वाथकी बस्ति देनेका निर्देश है।

बस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम्।
अदृश्यमाने रुधिरे दद्याद्गुल्मप्रभेदनम्॥

कुष्ठ रोगमें निर्दिष्ट चित्रकादि लेपके निर्माणमें प्रयुक्त पलाशादि क्षार गोमूत्रके प्रयोगसे ही तैयार होता है। इसी रोगमें वर्णित अन्य लेपोंका प्रयोग भी गोमूत्रके द्वारा ही करनेको कहा गया है। श्वेतकरवीराद्य तैल और श्वेतकरवीरपल्लवाद्य तैलके निर्माणके लिये भी गोमूत्रका प्रयोग होता है। कुष्ठकी चिकित्सामें वर्णित कनकक्षीरी तैलके निर्माणके लिये विभिन्न द्रव्योंका पाक करते समय अन्य द्रव्योंके साथ-साथ गोमूत्रका प्रयोग भी होता है। श्वेत कुष्ठकी चिकित्सामें बाकुचीके बीज, मूलीके बीजका प्रयोग गोमूत्रके साथ करनेका ही निर्देश है। गलितकुष्ठकी अवस्थामें गोमूत्र, निम्ब क्वाथका पान और लेप हितकर होता है।

प्रपतत्सु लसीकाप्रस्रुतेषु गात्रेषु जन्तुजग्धेषु।
मूत्रं निम्बविडङ्गे स्नानं पानं प्रदेहश्च॥

(चरक-चिकित्सा १०)

उन्मादकी चिकित्सामें निर्दिष्ट लशुनाद्य घृतके निर्माणमें गोमूत्रका प्रयोग होता है। अपस्मारकी चिकित्सामें वर्णित पंचगव्य घृतका एक घटक गोमूत्र भी है।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम्।
सिद्धं पिबेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम्॥

(चरक-चिकित्सा १०)

इसी तरह महापंचगव्य घृतके निर्माणमें भी गोमूत्रका प्रयोग होता है।

निम्ब-छालसे सिद्ध सरसोंके तैलमें गोमूत्र मिलाकर अपस्मारमें लेप करनेको कहा है। अपस्मारमें कपिला गायके मूत्रका नस्य हितकर होता है। इसके अतिरिक्त अपस्मारमें उत्सादन और उबटनके लिये गोमूत्रका प्रयोग कहा है। इसी रोगमें निर्दिष्ट मुस्ताद्यवर्तिके निर्माणमें बैलके मूत्रका प्रयोग होता है। गोमूत्रके साथ हरीतकीका प्रयोग शोथकी चिकित्सामें लाभ पहुँचाता है। त्रिदोष शोथकी चिकित्सामें हरड़, सोंठ, देवदारु तथा पुनर्नवाका चूर्ण गोमूत्रके साथ

विधिपूर्वक सिद्ध किया गया क्वाथ गोमूत्रके साथ लेनेपर ही लाभ करता है। इसके अतिरिक्त शोथकी चिकित्सामें अन्य लेप भी गोमूत्रके साथ प्रयोग करनेको कहा है।

बद्धोदरकी चिकित्सामें रोगीको स्वेदन करवानेके बाद तीक्ष्ण औषधियोंमें मिलाकर गोमूत्रमें तिल-तैल और लवण मिलाकर निरूह बस्ति और अनुवासन बस्तिका प्रयोग करना चाहिये। जलोदरकी चिकित्सामें गोमूत्र मिले नाना प्रकारके तीक्ष्ण क्षार और औषधिका प्रयोग करनेका निर्देश है। उदर रोगकी चिकित्सामें निर्दिष्ट गवाक्ष्यादि चूर्णके सेवनमें गोमूत्रका प्रयोग होता है। हपुषाद्य चूर्णके विभिन्न अनुपानोंमेंसे एक अनुपान गोमूत्र भी है। उदररोगमें विबन्ध होनेपर गोदुग्धमें गोमूत्र मिलाकर कुछ दिन पीना चाहिये। उदररोगमें दोषोंका आवरण नष्ट न होनेपर तीक्ष्ण द्रव्योंके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर निरूह बस्ति देनी चाहिये।

पाण्डुरोगमें स्नेहन करानेके बाद दूधमें गोमूत्र डालकर विरेचन कराना चाहिये। कफज पाण्डुरोगकी चिकित्सामें हरीतकीको गोमूत्रमें भिगोकर उसका कल्क बनाकर गोमूत्रके साथ पीना चाहिये। मातुलुंगके नूतन अंकुरको आगमें जलाकर गोमूत्रमें बुझाकर हाथसे मसलकर छानकर पाण्डु और शोथ रोगमें प्रयोग करना चाहिये। ग्रन्थिविसर्प रोगमें गोमूत्रको गर्म करके परिषेचन करना चाहिये। विष-चिकित्सामें निर्दिष्ट अमृतघृतके निर्माणमें गोमूत्रका प्रयोग होता है। उदावर्तकी चिकित्सामें वर्णित श्यामादि वर्ति तथा पिण्याकादि वर्तिके निर्माणमें गोमूत्रका प्रयोग होता है। इसी रोगमें निर्दिष्ट विरेचन योगोंमें भी गोमूत्रका प्रयोग होता है। एरण्ड तैलका प्रयोग भी गोमूत्रके साथ निर्दिष्ट है। कण्ठरोग दूर करनेके लिये कुटकी आदि द्रव्योंको यवकुट करके गोमूत्रमें विधिवत् क्वाथ बनाकर उसका प्रयोग करना चाहिये। मुखपाकरोगमें गोमूत्रका कवल करना चाहिये। उरुस्तम्भ रोगमें श्योनाकादि द्रव्योंका लेप गोमूत्रके साथ करनेको कहा है।

वात-व्याधिकी चिकित्सामें कहा है कि कफसे अनुगत वातमें गर्म गोमूत्र मिलाकर निरूह बस्ति देनी चाहिये। वातरक्तमें दोषोंका अनुलोमन करनेके लिये धारोष्ण दूधमें गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये। कफज वातरक्तमें गोमूत्र, क्षार आदिसे पकाये घृतसे अभ्यंग करना चाहिये। वातरक्तकी चिकित्सामें कफ और मेदकी वृद्धि होनेपर गोमूत्र-पानका निर्देश है।

संहितामें यद्यपि अन्य प्राणियोंके मूत्रका वर्णन भी किया गया है, पर चिकित्साकी दृष्टिसे गोमूत्रका महत्त्व सर्वोपरि है।

एक ज्वलन्त प्रश्न ?

बाल्यकाल चरित्र-शिक्षाका समुपयुक्त समय है। बालकका चरित्र-निर्माण बाल्यावस्थासे ही प्रारम्भ हो जाता है। चरित्रकी नींव माता-पिताकी संस्कृति होती है और उसकी भित्ति-सामग्री सामाजिक परिवेश होता है। माता-पिताकी संस्कृति जैसी होती है, बालकका चरित्र भी वैसा ही बनता जाता है। दयाशील, सहृदय, सौहार्द-सम्पन्न व्यक्तिका बालक संकोची, विनयी एवं सुशील बनता है, पर क्रूर-कुटिल एवं कठोर-हृदयकी सन्तान दुःशील, निर्दयी और निर्मोही निकलती है। अतः यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि यदि आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान सुसन्तान बने; सदय, सहृदय और सुसंस्कृत हो तो आप भी वैसे अवदात, अनवद्य गुणोंका आत्मावधान कीजिये। संतानोत्पत्ति सोद्देश्य होनी चाहिये। हमें भावना करनी चाहिये कि हमारी सन्तान देश-धर्मकी सेवामें तन, मन लगानेवाली और प्रभुभक्त हो। तभी हम चरित्रशील पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्नकर अपना तथा देशका कल्याण और विश्वका मंगल कर सकते हैं। चारित्र्यसे युक्त राम-जैसे पुत्र उत्पन्न करनेवाले देशमें 'रावण' उत्पन्न न हो, इसके लिये उक्त दिशाका पथिक बनना चाहिये। पर प्रश्न यह होता है कि क्या हम इस दिशामें बढ़ रहे हैं?

सुभाषित-त्रिवेणी

क्षमाकी प्रशंसा

[In praise of forgiveness]

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥

क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोषका आरोप होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं।

"The persons of a forgiving nature have only one shortcoming and no other. It is a pity that a person of forgiving temperament is considered to be a weaking.

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा॥

किंतु क्षमाशील पुरुषका वह दोष नहीं मानना चाहिये; क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्योंका गुण तथा समर्थोंका भूषण है।

"A forgiving temperament is not a sign of weakness. Forgiveness is a sign of strength. It is a virtue of the weak and an ornament of the strong".

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः॥

इस जगत्‌में क्षमा वशीकरणरूप है। भला, क्षमासे क्या नहीं सिद्ध होता? जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे?

"In this world, forgiveness can conquer everyone. It is a charm. Every obstacle can be overcome with patience and forbearance. No evil person can harm the one who carries peace as his weapon.

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत्॥

तृणरहित स्थानमें गिरी हुई आग अपने-आप बुझ जाती है। क्षमाहीन पुरुष अपनेको तथा दूसरेको भी दोषका भागी बना लेता है।

"A conflagration dies on its own when there is no dry grass to burn. A person lacking in the virtue of forgiveness makes himself and other associated persons equally guilty.

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा॥

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है।

"*Dharma* alone is the highest virtue. Forgiveness alone is the panacea for peace. Learning is the most satisfying attainment. *Ahimsa* is the greatest source of happiness.

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते॥

मूर्ख मनुष्य विद्वानोंको गाली और निन्दासे कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देनेवाला पापका भागी होता है और क्षमा करनेवाला पापसे मुक्त हो जाता है।

"An uncaring fool causes anguish to the learned by calling them names and demeaning them. The abusive person commits a sin. On the contrary, the person offended gets rid of a sin by forgiving the guilty.

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्॥

दुष्ट पुरुषोंका बल है हिंसा, राजाओंका बल है दण्ड देना, स्त्रियोंका बल है सेवा और गुणवानोंका बल है क्षमा।

"Violence is the strength of the wicked. The king is powerful because he can punish the guilty. A woman's strength is her ability to care. Forgiveness is the weapon of the virtuous.

[विदुर-नीति १।५३—५७, ३।४४-४५]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १०।१ बजेतक	शुक्र	चित्रा दिनमें १।२३ बजेतक	७ अप्रैल	× × × × ×
द्वितीया ,, ९।४५ बजेतक	शनि	स्वाती ,, १।४३ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।२४ बजेसे।
तृतीया ,, ९।१ बजेतक	रवि	विशाखा ,, १।३५ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।१ बजेतक, **वृश्चिकराशि** प्रात: ७।३७ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।३० बजे।
चतुर्थी ,, ७।५० बजेतक	सोम	अनुराधा ,, १।० बजेतक	१० ,,	**मूल** दिनमें १।० बजेसे।
पंचमी प्रात: ६।१६ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, १२।६ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४।२३ बजेसे, **धनुराशि** दिनमें १२।६ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें २।१४ बजेतक	बुध	मूल ,, १०।५२ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।१८ बजेतक, **मूल** दिनमें १०।५२ बजेतक।
अष्टमी ,, ११।५८ बजेतक	गुरु	पू०षा० ,, ९।२५ बजेतक	१३ ,,	**मकरराशि** दिनमें ३।१ बजेसे।
नवमी ,, ९।३२ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, ७।४९ बजेतक	१४ ,,	**मेषसंक्रान्ति** सायं ५।४ बजे, **वैशाखी, खरमास समाप्त।**
दशमी ,, ७।६ बजेतक	शनि	श्रवण प्रात: ६।८ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१९ बजेसे रात्रिमें ७।६ बजेतक, **कुम्भराशि प्रारम्भ** सायं ५।१९ बजेसे, **पंचकारम्भ** सायं ५।१९ बजे।
एकादशी सायं ४।४४ बजेतक	रवि	शतभिषा रात्रिमें २।५७ बजेतक	१६ ,,	**वरूथिनी एकादशीव्रत (सबका), श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।**
द्वादशी दिनमें २।३० बजेतक	सोम	पू०भा० ,, १।३४ बजेतक	१७ ,,	**मीनराशि** रात्रिमें ७।५५ बजेसे, **सोमप्रदोष-व्रत।**
त्रयोदशी ,, १२।२८ बजेतक	मंगल	उ०भा० ,, १२।२७ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।२८ बजेसे रात्रिमें ११।३८ बजेतक।
चतुर्दशी ,, १०।४७ बजेतक	बुध	रेवती ,, ११।४२ बजेतक	१९ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ११।४२ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ११।४२ बजे, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, ९।२५ बजेतक	गुरु	अश्वनी ,, ११।१७ बजेतक	२० ,,	**अमावस्या, सायन वृषका सूर्य।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८।२९ बजेतक	शुक्र	भरणी रात्रिमें ११।२० बजेतक	२१ अप्रैल	**वृषराशि** रात्रिशेष ५।२८ बजेसे।
द्वितीया ,, ८।३ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ११।५३ बजेतक	२२ ,,	**श्रीपरशुराम-जयन्ती।**
तृतीया ,, ८।६ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, १२।५६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।२४ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, अक्षयतृतीया।**
चतुर्थी ,, ८।४१ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, २।२८ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।४१ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें १।४२ बजेसे।
पंचमी ,, ९।४४ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ४।२८ बजेतक	२५ ,,	**आद्य जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।**
षष्ठी ,, ११।१५ बजेतक	बुध	पुनर्वसु अहोरात्रि	२६ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें १२।१२ बजेसे, **श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।**
सप्तमी ,, १।०५ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु प्रात: ६।४७ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें १।५ बजेसे रात्रिमें २।६ बजेतक, **श्रीगंगासप्तमी।**
अष्टमी ,, ३।७ बजेतक	शुक्र	पुष्य दिनमें ९।२० बजेतक	२८ ,,	**बगलामुखी-जयंती, भरणीमें सूर्य** दिनमें ९।१९ बजे, **मूल** दिनमें ९।२० बजेसे।
नवमी सायं ५।१० बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ११।५८ बजेतक	२९ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ११।५८ बजेसे, **श्रीसीतानवमी।**
दशमी रात्रिमें ७।५ बजेतक	रवि	मघा ,, २।३० बजेतक	३० ,,	**मूल** दिनमें २।३० बजेतक।
एकादशी ,, ८।४३ बजेतक	सोम	पू०फा० सायं ४।४५ बजेतक	१ मई	**मोहिनी एकादशीव्रत (सबका), भद्रा** प्रात: ७।५४ बजेसे रात्रिमें ८।४३ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें ११।१४ बजेसे।
द्वादशी ,, ९।५७ बजेतक	मंगल	उ०फा० रात्रिमें ६।४० बजेतक	२ ,,	**रुक्मिणीद्वादशी।**
त्रयोदशी ,, १०।४४ बजेतक	बुध	हस्त ,, ८।२९ बजेतक	३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १०।५८ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, ९।५ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।५७ बजेसे, **तुलाराशि** दिनमें ८।४६ बजे, **श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत।**

कृपानुभूति

रामजी ऐसे कृपा करते हैं भक्तोंपर

बात बहुत पुरानी है, उत्तर प्रदेशके वाराणसी नगरमें एक रामायण-मण्डली थी। उसके कलाकार विभिन्न अवसरोंपर जगह-जगह जाकर रामचरित्रका मंचन करते थे। रामायण-मण्डलीमें करीब बीस-बाईस कलाकार सदस्य थे, जो विभिन्न प्रकारके पात्रोंका अभिनय करते थे। रामनारायणजी मुख्य मण्डली-संयोजक थे, जो संगीतका कार्य भी करते थे। दूसरे केशवप्रसादजी थे, जो विभिन्न प्रकारकी व्यवस्थाका काम देखते थे। दोनों मिलकर रामायण-मण्डलीका काम चला रहे थे। रामनारायणजी संगीतके साथ मंचनकी सारी रूपरेखा, जैसे—कौन-सा पात्र किसे देना है; उसकी व्यवस्था करते। इस प्रकार कई वर्षोंसे रामायण-मण्डलीका मंचन अच्छी प्रकारसे निरन्तर चला आ रहा था। रामनारायणजी श्रीरामजीके परम भक्त थे। वे मण्डलीके हर पात्रकी सुविधाका बराबर ध्यान रखते थे। केशवप्रसादजीका काम अन्य व्यवस्थाओंमें प्रयोग होनेवाली सामग्रियोंको उपलब्ध करानेका था। पिछले कुछ दिनोंसे केशवप्रसादजी और रामनारायणजीमें आपसी दूरियाँ बढ़ी हुई थीं। दोनों एक-दूसरेकी बातोंको अनसुनी कर देते थे। रामनारायणजीपर रामायण-मण्डलीकी पूरी जवाबदेही थी।

एक बार रामायण-मंचनकी तैयारी चल रही थी। रामनारायणजीने केशवप्रसादको बुलाकर समझाया कि देखो भाई, रामका पात्र निभानेवाला बालक १६-१७ सालका कमजोर बालक है। कल सीता-स्वयंवरमें शिवधनुष तोड़नेका प्रसंग होगा। आप जो धनुष बना रहे हैं, वह पतला और कमजोर बनाना; ताकि रामका पात्र निभानेवाला बालक धनुषको आसानीसे तोड़ सके। केशवप्रसादजीकी रामनारायणजीसे आपसी पटरी नहीं बैठती थी। केशवप्रसादके मनमें आया कि यह अवसर रामनारायणजीको नीचा दिखानेके लिये उचित है। यह सोचकर केशवप्रसादजीने एक लोहारसे लोहेका धनुष बनवा दिया। अगले दिन वह समय आ गया, जब यह लीला होनेवाली थी। उस समय लीला देखनेके लिये दर्शकोंकी भारी भीड़ थी। राम बने बालकने जब शिव-धनुष तोड़नेहेतु उठानेका प्रयास किया, तो उसका भार एवं लोहेका धनुष देख घबरा गया कि यह लोहेका धनुष कैसे टूटेगा? रामनारायणजी राम बने पात्रका चेहरा देख समझ गये कि कुछ-न-कुछ गड़बड़ जरूर है। उनको आभास हो गया था कि धनुष लोहेका है, इसलिये भारी है। लेकिन अब ऐसी स्थितिमें किया क्या जाय? दर्शकोंकी भीड़ एवं उनका उत्साह देख रामनारायणजी अत्यन्त चिन्तित हो गये कि धनुष इस समय बदला कैसे जाय? उन्हें कुछ न सूझा वे सीधे भगवान् श्रीरामका स्मरणकर विनती करने लगे—'हे प्रभो! इस घोर संकटमें हमारी रक्षा करो। वर्षोंसे हम रामायणका मंचन करते आ रहे हैं। हे प्रभो! ऐसी परिस्थिति कभी नहीं हुई। रक्षा करो प्रभु, रक्षा करो। आजकी इस लीलाकी लाज रख लो प्रभो!' रामनारायणजी दीन-हीन हालतमें बेसुध हो गये। इधर कुछ क्षणोंमें ही राम बने बालकने धनुष उठा उसे तोड़कर जमीनपर पटक दिया और धनुष टूटते ही 'जय श्रीराम' के नारे लगने लगे।

रामनारायण दौड़े आये और धनुष उठाकर देखा कि धनुष सचमुच लोहेका है। वे भगवान् रामकी असीम कृपा देखकर भाव-विभोर हो गये। वे राम बने बालकके चरणोंमें गिर पड़े और फूट-फूटकर रोने लगे, आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे बार-बार श्रीरामजीका धन्यवादकर उनकी कृपाके आगे नतमस्तक हो रोये चले जा रहे थे, प्रभो! आपने हमारी लाज रखी। केशवप्रसादको भी अपनी गलतीका अनुभव हो चुका था। वह रामनारायणजीके चरणोंमें लिपटकर रो रहे थे। ऐसे हैं हमारे श्रीराम! हमेशा अपने भक्तोंपर कृपा करते हैं। दर्शकोंमेंसे कुछ दर्शकोंने जब मंचपर जाकर देखा कि धनुष लोहेका था, तो वे भी भाव-विभोर हो 'जय श्रीराम' के नारे लगाने लगे। [**प्रेषक—श्रीमोहनजी शर्मा**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गायत्रीसिद्ध व्यक्तिकी स्थिति

बात सन् १९५० ई०के आस-पासकी है। मेरे पिता स्व० कृष्ण गोपालजी सारडाने मुझसे कही थी। कलकत्तेमें नारायणप्रसादजी अग्रवाल अपनी कपड़ोंकी दुकान चलाते थे। वे मूलत: भिवानीके पासके किसी गाँवसे थे। उनका यज्ञोपवीत-संस्कार हो चुका था। वे ईमानदारीसे अपना व्यवसाय चलाते और नित्य ब्रह्ममुहूर्तमें गायत्री महामन्त्रका जप करते। दुकानमें भी माला रखते और जब भी खाली समय मिलता जप करने बैठ जाते। धीरे-धीरे महामन्त्रकी उनपर कृपा होती चली गयी। उन दिनों कलकत्तेमें अवकाशके दिनोंमें सब एक जगह इकट्ठे हो जाते और भजन-कीर्तन करते थे। ऐसी अनेक मण्डलियाँ बैठती थीं। वे जब किसी मण्डलीमें जाते तो अपना एक प्रिय भजन जरूर गाते—*'तू क्यू भूल्यो गुमानमें तेरे स्यामी मौत खड़ी।'*

उनका एकमात्र पुत्र बीमार हो गया। खूब उपचार करवाया, बड़े-बड़े वैद्य, कविराज, डाक्टरोंको दिखलाया, इलाज करवाया; परंतु रोग असाध्य हो गया। एक दिन वह भी आ गया, जिस दिन डॉक्टरोंने जवाब दे दिया। पुत्र शय्यापर पड़ा था, श्वास चल रही थी, पिता कमरेमें आये, पुत्रको देखा सिरपर हाथ फेरा और कहा—'बेटा! जा रहा है, तो तू क्यों जाता है, तेरी जगह मैं चला जाता हूँ।' इतना कहकर माला हाथमें ली, खड़े हुए और गायत्री जपते-जपते चारपाईकी प्रदक्षिणा की। बेटा धीरे-धीरे ठीक होता चला गया। इधर पुत्र ठीक हुआ और नारायणप्रसादजी प्रयाण कर गये। अपने पिताकी कही बात मेरी स्मृतिमें बस चुकी है एवं प्रकाश भी मिलता है कि कितनी कृपा है भगवान्‌की हम सबपर। परमपिताने हमारे लिये क्या-क्या नहीं किया है? क्या-सद्ग्रन्थ हैं, गंगा है, यमुना है, अनेकों मन्त्र हैं महापुरुषोंकी वाणी हैं। हमें तो इनपर विश्वास करके मात्र इनका सेवन ही तो करना है।—**श्रीअरविन्द सारडा**

(२)

यमलोकसे वापसी

इस बातका जिक्र माँने कई बार किया था बचपनमें भी और जब हम बड़े हो गये तब भी। यह बात उस समयकी है, जब वे ९-१० वर्षकी थीं यानी सन् १९३९ ई०के आस-पास की।

बात है, राजस्थानके चुरू शहरकी, जहाँ वे जन्मी थीं। वे कई बार एक वृद्ध महिलाको देखती थीं, जो हाथमें लाठी लेकर चलती थी और उसके ललाटपर ठीक बीचमें एक त्रिशूलके आकारका बना हुआ चिह्न साफ-साफ दीखता था। जब भी वह महिला किसीको भी कोई गलत कार्य करते देखती या किसीपर अत्याचार करते या अपशब्द कहते सुनती-देखती, तो उसमें करुणाका भाव प्रकट हो उठता और बोल पड़ती 'मत करो। भयंकर फल भोगना पड़ेगा, बच नहीं सकोगे, कोई नहीं बच पाया है आजतक।'

उसका चुरूके लोग आदर करते थे और कुछ लोगोंको उसकी इस बातको बार-बार कहनेके पीछेका कारण ज्ञात था, जो उसीके मुँहसे उन्होंने सुना था।

उसने कुछ लोगोंको अपनी आप-बीती बतायी थी उसने यह बताया था 'मैं एक बार मर गयी थी और मृत्युके बाद जहाँ पहुँची, वहाँका दृश्य इतना भयावह था कि मैं काँप उठी थी। भयसे मैं बेहोश-सी हो गयी अचानक कोई बोल पड़ा, 'अरे! ये किसे ले आये हो इसकी आयु शेष है, ये गलतीसे आ गयी है, वापस भेजो। लेकिन ठहरो, अब जब कि ये आ गयी है, तो इसके ललाटपर एक चिह्न बना दो, जिससे इसे यहाँक

चुकी है कि पापका परिणाम क्या होता है। ये स्वयं तो पाप करेगी ही नहीं, दूसरोंको भी पापसे रोकेगी।'

माँने कई बार इस बातको हम सबसे कहा था और माँके ऊपर इसका प्रभाव भी था, जो उनके आचरणमें साफ दिखता था। आज जब चार-पाँच दशक बाद भी इस घटनाके बारेमें सोचता हूँ, तो भगवान् वेदव्यासकी वाणीपर पूर्ण विश्वास हो गया है। शास्त्र और गुरुओंकी वाणीपर आचरण करनेसे कल्याण निश्चित है।

—श्रीअरविन्द सारडा

(३)

भजन-गायक मुस्लिम बालक

लगभग साठ वर्ष पूर्वकी बात है। गुजरात राज्यमें काठियावाड़क्षेत्रमें मोरारजी पण्डितकी एक भजन-मण्डली थी। वे सभा-सम्मेलनोंमें, साधु-समागमोंमें भजन गाते थे। एक बार उनकी मण्डलीमें एक मुसलमान लड़का शामिल हो गया। उसका नाम अब्दुल्ला था, पर सभी लोग उसे होथी कहकर पुकारते थे। होथी प्रभु रामके नामका दीवाना बन गया था। वह भजन गाता तो ऐसा समा बँध जाता कि लोग झूमने लगते। उसके पिता इरफानको यह सहन नहीं था कि उनका बेटा श्रीराम, श्रीकृष्ण और विष्णुके भजन गाये। पिता कहता यह क्रुफ छोड़ दे, तू क्यों मेरी बदनामी करनेमें लगा है। अनेक बार होथीकी पिटायी भी हुई, लेकिन उसने भजन-मण्डलीका साथ नहीं छोड़ा।

एक दिन पिता इरफान अफीम खरीदकर लाया और बोला—'बेटा, तू नहीं मानता तो देख मैं अफीम पीकर जान दे देता हूँ।' वह बड़ी मात्रामें प्यालेमें अफीम घोलकर पीनेके लिये बैठ गया। होथीने प्याला अपने हाथोंमें ले लिया और बोला—'अब्बाजान, आप ऐसा क्यों करेंगे, आपकी परेशानीका कारण तो मैं हूँ, मैं ही इसे पी लेता हूँ।' इतना कहकर वह अफीमसे भरा पूरा प्याला गटक गया। तदनन्तर वह कमरा बन्दकर सो रात मोरारजी पण्डितकी भजन-मण्डली बाजारके चौराहेवाले मन्दिरमें भजन गाने गयी थी। जोरदार भजन हो रहा था भजनोंके पश्चात् आत्मविभोर हुए श्रोता होथीकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। कहते थे होथीने तो कमाल कर दिया। उसके गीतोंमें सच्ची प्रार्थना थी। ये बातें जब इरफानतक पहुँचीं, तो वह सोचने लगा कि उसे तो मैं कमरेमें बन्द कर दिया हूँ। इतनी अफीम पीकर कोई शख्स कैसे जिन्दा रह सकता है? वह तो अब मुल्के अदमका सफर कर चुका होगा। मरनेकी बात सोचकर इरफानका दिल भर आया। वह रोने लगा। सोचा रोजा-नमाज न सही, रामके तराने गाकर ही काश वह जिन्दा रहता? अब उसकी माँ कैसे सब्र करेगी? तभी उसकी इच्छा हुई कि जरा भजन-स्थलीपर जाकर देखूँ। दौड़ा-दौड़ा इरफान मन्दिरमें गया तो वहाँ देखता है कि होथी आँखें बन्द किये होश-हवाश खोकर गानेमें मगन है। उसे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। उसके मुँहसे निकला 'या खुदा! यह कैसी करामात है!' फिर पता नहीं इरफानके मनमें क्या आया कि वह अपनी सब सख्ती त्यागकर होथीके कदमोंमें पड़ गया। होथी भजन गाना छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगा। इस घटनाके बाद कभी भी इरफानने होथीको भजन-मण्डलीमें जाकर रामका भजन गानेसे नहीं रोका, न कभी विरोध किया। उसका मन बदल गया और यही लड़का होथी एक दिन काठियावाड़में सन्त होथीके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

—श्रीउमेश प्रसाद सिंह

(४)

कालका खेल

अबसे सात दशक पूर्वकी बात है। बंगाली बाबाने अपने शिष्य छात्र युवा साधु स्वामी रामसे कहा—'मेरे बेटे! तुम दार्जिलिंग चले जाओ। वहाँ नगरके बाहर एक जलस्रोत है तथा उसके किनारे श्मशानभूमि है। चाहे जैसी परिस्थितिमें तुम्हें रहना पड़े, वहाँ स्थिर रहकर ४१

हो, तुम उस स्थानको न छोड़ना।'

स्वामी राम वहाँ गये। विश्वविद्यालयसे प्राप्त ग्रीष्मावकाशके समयको गुरूपदिष्ट साधनामें लगा दिया। वहाँ वे घास-फूसकी एक कुटिया बनाकर रहने लगे, वहीं आग जलाकर भोजन बनाते और साधना करते। उन्होंने ३९ दिनतक अभ्यास किया। तबतक उन्हें कोई अनुभूति नहीं हुई। मन उचट गया। आगको बुझाकर, कुटियाको उजाड़कर, अभ्यास त्यागकर रात्रिमें ही नगरकी ओर चल पड़े। नगरके मुख्य मार्गसे होकर जा रहे थे, तभी संगीतकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। गायनका प्रसंग चल रहा था। जीवनरूपी दीपमें तेल बहुत थोड़ा है, जबकि रात्रि बहुत लम्बी है। गायिकाने यह पद्यांश कई बार दुहराया। तबलेकी धिक्-धिक् ध्वनिसे उन्हें लगा कि वह उन्हें धिक्कार रहा है। वे आगे न बढ़े, रुक गये और पीछे लौट पड़े, शेष साधनाको पूरा करनेके लिये। ४१ में-से ३९ दिन बीते हैं, अभी २ दिन बाकी हैं। जब साधनाके ४१ दिन पूरे हुए तो उन्हें अनुभूति हुई। वे कृतकृत्य हुए। अब वे नगरकी ओर लौटकर उस गायिकाके घर गये। वह नगरकी अतिसुन्दर प्रसिद्ध नर्तकी थी। लोगोंकी दृष्टिमें वह एक वेश्या थी। उस सुन्दरीने एक युवा साधुको अपने घर आते देखा तो चिल्लाकर बोली—'यहाँ मत आइये। यह स्थान आपके योग्य नहीं है।'

मना करनेपर भी स्वामी राम उसकी ओर आगे बढ़ते गये। उसने द्वार बन्द कर लिया और हृष्ट-पुष्ट अपने सेवकको रोकनेको कहा। सेवकने जब जाने नहीं दिया तो स्वामी रामने कहा—'नहीं, मैं उन्हें देखना चाहता हूँ। वे मेरी माँके सदृश हैं। उन्होंने मेरी बहुत सहायता की है। मैं उनका आभारी हूँ। उन्होंने अपने गीतसे मुझे प्रबुद्ध कर दिया, अन्यथा मैं अपनी साधना पूर्ण न कर पाता। साधना पूर्ण न कर सकनेपर मैं पूरे जीवनभर पश्चात्ताप ही करता।' जब उसने यह सुना तो अपना द्वार खोल दिया। तब स्वामीजीने कहा—'वास्तवमें आप मेरी माँके सदृश हैं।'

स्वामी रामने उस सुन्दरीसे पूरी घटना बतायी। वह बंगाली बाबाके नामसे परिचित थी। दोनोंकी परस्पर कुछ देरतक वार्ता होती रही। स्वामी राम जब वहाँसे चलने लगे तो उसने कहा—'मैं वचन देती हूँ कि आजसे मैं आपकी माँके समान ही जीवन-यापन करूँगी। मैं यह सिद्ध कर दिखाऊँगी कि मैं न केवल आपके लिये, अपितु बहुतोंके लिये माँके सदृश होऊँगी। आपने मुझे जाग्रत् कर दिया।'

दूसरे दिन वह सुन्दरी ज्ञानकी नगरी बनारसके लिये प्रस्थान कर गयी। वहाँ पहुँचकर वह गंगाजीमें एक नौकापर रहने लगी। सायंकाल वह गंगाकी रेतीमें जाकर भगवान्का भजन और कीर्तन करती। हजारों लोग आकर उसके साथ संकीर्तनमें भाग लेते। उसने अपनी नौकापर लिख रखा था—'मेरे प्रति साधुका भ्रम न करें, मैं एक वेश्या थी। कृपया मेरा चरणस्पर्श न करें।' वह न तो किसीपर साक्षात् दृष्टिपात करती थी और न किसीसे बात ही करती थी। यदि कोई उससे बात करना चाहता तो वह कहती—मेरे साथ बैठकर ईश्वरका भजन करें। यदि कोई पूछता कि आप कैसे हैं? तो वह कहती—राम। यदि कोई पूछता कि आपको कुछ चाहिये? आपके लिये क्या मैं कुछ ला सकता हूँ? तो वह उत्तर देती—राम।

एक दिन, लगभग पाँच-छः हजार लोगोंके विशाल जन-समूहमें उसने घोषणा की—'मैं प्रातः काल यहाँसे विदा हो रही हूँ। कृपया मेरे शरीरका जलप्रवाह कर दें, ताकि मछलियाँ आदि इसका उपयोग कर लें। इसके बाद वह मौन हो गयी।'

दूसरे दिन उस सुन्दरी देवीने योगबलसे अपना शरीर-त्याग कर दिया। कालने उसको एक रूपलावण्यवती वेश्यासे सिद्धयोगिनी बना दिया। यह है कालका खेल।

—पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण'

मनन करने योग्य

धर्मात्माको कभी दुःख नहीं होता

पाण्डव वनमें रहकर अपने दुःखके दिन काट रहे थे, परंतु दुर्योधनकी खल-मण्डली अपनी दुष्टताके कारण उनके विनाशकी ही बात सोच रही थी। दुर्योधनने एक बार दुर्वासा मुनिको प्रसन्न करके उनसे ये वर माँगा कि—'हमारे धर्मात्मा बड़े भाई महात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित वनमें रहते हैं, एक दिन आप अपने दस हजार शिष्योंसहित उनके यहाँ भी जाकर अतिथि होइये; परंतु इतनी प्रार्थना है कि वहाँ सब लोगोंके भोजन कर चुकनेपर जब यशस्विनी द्रौपदी खा-पीकर सुखसे आराम कर रही हो, उसी समय जाइयेगा।' दुर्योधनने कुचक्रियोंकी सलाहसे यह सोचा था कि द्रौपदीके खा चुकनेपर उस दिनके लिये सूर्यके दिये हुए पात्रसे अन्न मिलेगा नहीं, इससे कोपन-स्वभाव दुर्वासा पाण्डवोंको शाप देकर भस्म कर डालेंगे और इस प्रकार अपना काम सहज ही बन जायगा। सरलहृदय दुर्वासा दुर्योधनके इस कपटको नहीं समझे, इसलिये वे उसकी बात मानकर पाण्डवोंके यहाँ काम्यक-वनमें जा पहुँचे। पाण्डव द्रौपदीसहित भोजनादि कार्योंसे निवृत्त होकर सुखसे बैठे वार्तालाप कर रहे थे। इतनेमें ही दस हजार शिष्योंसहित दुर्वासाजी वहाँ जा पहुँचे। युधिष्ठिरने भाइयोंसहित उठकर ऋषिका स्वागत-सत्कार किया और भोजनके लिये प्रार्थना की। दुर्वासाजीने प्रार्थना स्वीकार की और वे नहानेके लिये नदी-तीरपर चले गये। इधर द्रौपदीको बड़ी चिन्ता हुई, परंतु इस विपत्तिसे प्रिय बन्धु श्रीकृष्णके सिवा उनकी सखी कृष्णाको और कौन बचाता? उसने भगवान्‌का स्मरण करते हुए कहा—'हे कृष्ण! हे गोपाल! हे अशरणशरण! हे शरणागतवत्सल! अब इस विपत्तिसे तुम्हीं बचाओ! तुमने कौरवोंकी राजसभामें जैसे दुष्ट दुःशासनके हाथसे मुझे बचाया था, वैसे ही इस विपत्तिसे भी बचाओ।' इस समय भगवान् द्वारकामें रुक्मिणीजीके पास महलमें थे। द्रौपदीकी स्तुति सुनते ही उसे संकटमें जान भक्तवत्सल भगवान् रुक्मिणीको त्यागकर बड़ी ही तीव्रतासे द्रौपदीकी ओर दौड़े। अचिन्त्यगति ईश्वरको आते क्या देर लगती? वे द्रौपदीके पास आ पहुँचे। द्रौपदीके मानो प्राण आ गये! उसने प्रणाम करके सारी विपत्ति भगवान्‌को कह सुनायी। भगवान्‌ने कहा—'यह सब बात पीछे करना, मुझे बड़ी भूख लगी है, मैं घबरा रहा हूँ, मुझे कुछ खानेको दो।' द्रौपदीने कहा—'भगवन्! खानेके फेरमें पड़कर तो मैंने तुम्हें याद ही किया है मैं भोजन कर चुकी हूँ, अब उस पात्रमें कुछ भी नहीं है। भगवान् बड़े विनोदी हैं, कहने लगे—'अरी कृष्णे! मैं तो भूखो मर रहा हूँ और तू दिल्लगी कर रही है? दौड़कर स्थाली तो इधर ला, मैं देखूँ उसमें कुछ है या नहीं।'

बेचारी द्रौपदी क्या करती! पात्र लाकर सामने रख दिया। भगवान्‌ने तीक्ष्ण दृष्टिसे देखा और एक शाकका पत्ता दूँढ़ निकाला। भगवान् बोले—'तू कह रही थी न कि कुछ भी नहीं है, इस पत्तेसे तो त्रिभुवन तृप्त हो जायगा।' यज्ञभोक्ता भगवान्‌ने पत्ता उठाया और मुँहमें डालकर कहा—

'विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक्॥'

(महा० वन० २६३। २५)

'इस पत्तेसे सारे विश्वके आत्मा यज्ञभोक्ता भगवान् तृप्त हो जायँ।' साथ ही सहदेवसे कहा कि 'जाओ, ऋषियोंको भोजनके लिये बुला लाओ।' उधर नदी-तटपर दूसरा ही गुल खिल रहा था, सन्ध्या करते-करते ही ऋषियोंके पेट फूल गये और डकारें आने लगी थीं। शिष्योंने दुर्वासासे कहा—'महाराज! हमारा तो गलेतक पेट भर गया है, वहाँ जाकर हम खायँगे क्या?' दुर्वासाकी भी यही दशा थी। वे बोले—'भैया! भागो यहाँसे जल्दी! ये पाण्डव बड़े ही धर्मात्मा, विद्वान् और सदाचारी हैं तथा भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त हैं। वे चाहें तो हमें वैसे ही भस्म कर सकते हैं, जैसे रूईके ढेरको आग! मैं अभी अम्बरीषवाली घटना भूला नहीं हूँ, श्रीकृष्णके शरणागतोंसे मुझे बड़ा भारी डर लगता है।' दुर्वासाके यह वचन सुन शिष्य-मण्डली यत्र-तत्र भाग गयी। सहदेवको कहीं कोई न मिला।

अब भगवान्‌ने पाण्डवोंसे और द्रौपदीसे कहा, 'लो, अब तो मुझे द्वारका जाने दो। तुमलोग धर्मात्मा हो, धर्म करनेवालेको कभी दुःख नहीं होता।' [**महाभारत**]

गीताप्रेससे प्रकाशित—चित्रमय प्रकाशन अब उपलब्ध

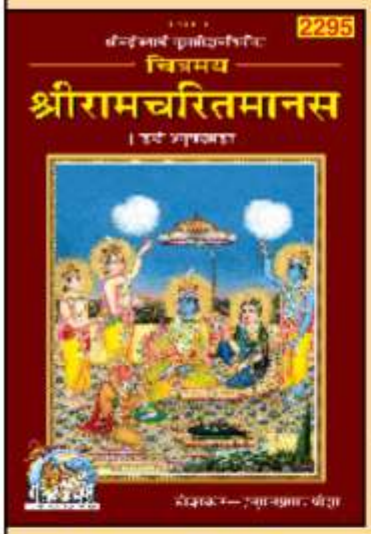

चित्रमय श्रीरामचरितमानस सटीक, (कोड 2295) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाओंके रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपर-पर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹1600, डाकखर्च फ्री।

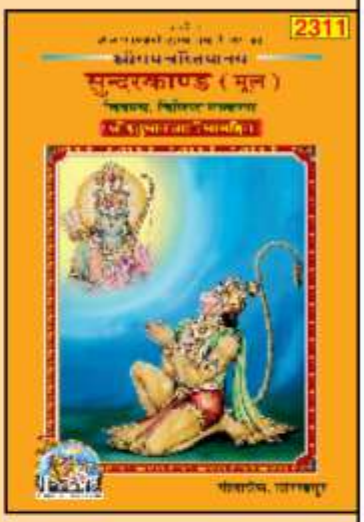

चित्रमय श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड मूल (कोड 2311) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—श्रीहनुमान्जीके 70 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹150, डाकखर्च ₹50

चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती सटीक (कोड 2304) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—

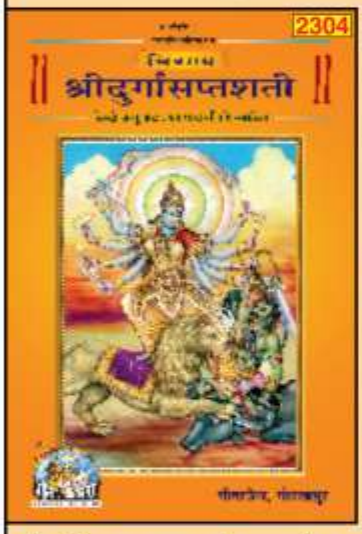

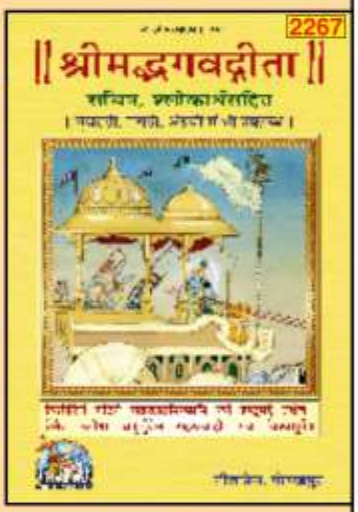

माँ दुर्गाजीकी 100 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹450, डाकखर्च ₹90

श्रीमद्भगवद्गीताका (कोड 2267) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीगीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल भाषामें उसका अर्थ और अन्तमें आरती दी गयी है। साथ ही प्रसङ्गानुकूल यथास्थान बहुत ही मनोरम 129 आकर्षक चित्रोंको भी दिया गया है। मूल्य ₹300, **(कोड 2269)** गुजराती मू॰ ₹300, **(कोड 2271)** मराठी मू॰ ₹250, **(कोड 2283)** अंग्रेजी मू॰ ₹280 **(प्रत्येकका डाकखर्च ₹70)**

गीताप्रेससे प्रकाशित—करपात्रीजी महाराजकी पुस्तकें

भक्तिसुधा (कोड 1982)—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला आदिका विशद विवेचन है। द्वितीय भागमें देवोपासना तत्त्व, गायत्री-तत्त्व, शक्तिका स्वरूप, शक्तिपीठ-रहस्य, रामजन्म-रहस्य आदिका तात्त्विक विवेचन है। इसके तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना, भगवत्कथामृत आदि विविध विषयोंपर मार्मिक विवेचन है एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹300, डाकखर्च ₹70

मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, (कोड 698) पुस्तकाकार—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनकी तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। यह राजनीति और दर्शनके विश्वकोशके रूपमें आदरणीय और मननीय ग्रन्थ है। मूल्य ₹200, डाकखर्च ₹50

प्र० ति० 20-02-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख-कृष्ण अष्टमी, वि०सं० 2080** [दिनांक 13-04-2023, दिन गुरुवार]-**से आषाढ़ कृष्ण द्वादशी, वि०सं० 2080** [दिनांक 15-06-2023, दिन गुरुवार]-तक सत्संगका विशेष आयोजन प्रारम्भ किया जायगा, जो लगभग दो मासतक चलेगा। इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्-गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक **यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक 22 मई, दिन-सोमवार** (ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी **पूजा 21 मई, दिन रविवारको प्रारम्भ हो जायगी।** इच्छुक जनोंको **20 मई, दिन शनिवार** तक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **आधारकार्ड** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक-**गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम-249304**

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

1-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, 2-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक
3-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
4-सम्पादकका नाम—प्रेमप्रकाश लक्कड़, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
5-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, 151, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम 1961 के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : **gitapress.org**—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवाने के लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)